स्त्री विमर्श

आग में तपकर ही कुंदन अपना रूप पाता है । उसी तरह चिंतन की आग में तपकर ही विमर्श अपने अस्तित्व में आता है । यह कहना गलत न होगा कि विमर्श चिंतन का ही एक रूप है । इसके ज़रिए ही एक विचार के सभी पहलुओं की जाँच पड़ताल की जा सकती है, चाहे वे अच्छे हो या बुरे ।"स्त्री विमर्श, स्त्री मुक्ति, नारी मुक्ति, नारीवादी आंदोलन आदि किसी भी दिशा से विचार किया जाए, इन सभी के मूल में एक ही चिंतन दृष्टिगत होता है, स्त्री के अस्तित्व को उसके मौलिक रूप में स्थापित करना ।"[1] अत: इस बात को परखना बहुत ज़रूरी है कि स्त्री-विमर्श के संदर्भ में स्त्री- चिंतन का क्या योगदान है ।

स्त्री विमर्श की पृष्ठभूमि

स्त्री-स्वतंत्रता के चिंतन का इतिहास हज़ारों साल पुराना है । कई मील के पत्थरों को पार कर औरतों ने 2017 में कदम रखा है । इतने सालों में औरतों ने बहुत कुछ पाया और बहुत कुछ खोया ।

'फेमिनिज़म' शब्द सबसे पहले, सन् 1880 के दशक में फ्रांस में उभरा था । पहले इसका अर्थ मात्र 'स्त्री का अधिकार' ही समझा जाता था। पर इस शब्द को गहराई से परखने के बाद ज्ञात हुआ कि स्त्री से संबंधित सभी विषयों के बारे में कहना, लिखना और करना नारीवाद या फेमिनिज़्म है । नारी का अधिकार क्या है, समाज में उसकी हैसियत क्या है, वह किस तरह अपने ऊपर हो रहे शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाए आदि नारीवाद के मुख्य विषय हैं । वक्त के साथ-साथ नारीवाद का दायरा भी बदलता गया । आज स्त्री केवल स्त्रियों की समस्याओं में उलझी हुई नहीं है । वह अपने विकास को

---

1. शरद सिंह, पत्तों में कैद औरतें, पृ.सं- 152

सामाजिक सरोकारों से जोड़ती है, क्योंकि स्त्री अधिकार का सीधा संबंध जीने के अधिकार से है।

नारीवादी आंदोलन करोड़ों लोगों का आंदोलन है। यह अचानक से नहीं बना। सभी अन्यायों को देखकर भी अनदेखा किये सामाजिक दुरवस्था के खिलाफ आरंभ में यह एक आक्रोश था। फिर यह एक सामाजिक क्रांति का रूप लेने लगा था। इसमें पूरे समाज को बदलने की शक्ति थी। जिस तरह अनुकूल वातावरण पाकर बीज में से अंकुर फूट पड़ता है, उसी तरह कुछ महिलाएँ अपना प्रतिरोध का स्वर उठाने लगीं। अपने को बनाये रखने के लिए इच्छुक आधी आबादी का प्रतिरोध ! यहीं से शुरू होता है नारीवादी आंदोलन का इतिहास। केवल 200-250 साल पुरानी यह क्रांति आज पूरे समाज में बदलाव का मशाल लेकर घूम रही है।

नारी, आज कई दृष्टियों से आज़ादी की मज़ा लूट रही है। पर इसे पाने के लिये कइयों ने जी तोड़ मेहनत की थी। नारी की आज़ादी के लिये जिहाद में कूद पड़े लोगों की सूची थोड़ी लम्बी है। पर महत्वपूर्ण हस्तियों को पहचाने बिना नारी विमर्श का विश्लेषण अधूरा होगा। समाजशास्त्री, नारी विमर्श के विकास के तीन चरण मानते हैं। पहला चरण 19वीं शताब्दी से लेकर 20वीं शताब्दी की शुरुआती दशकों तक है। इस समय मताधिकार की माँग सबसे प्रबल थी। दूसरा चरण लगभग 1960 से शुरू होता है। अब माँग थी समाज का आद्यांत परिवर्तन। स्त्रियों की समानता, समान अवसर और राजनीतिक अधिकार ही नहीं, बल्कि मन और संस्कृति के स्तर पर भी समानता की चाह बढ़ने लगी। यानी दुनिया के हर कोने में सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव होने लगा। तीसरा चरण लगभग 1990 में उभरा। यह नए भूमंडलीय विश्व की पीढ़ी से प्रेरित है। इस समय आज के दौर के प्रतिकूल अनुभवों को निडर होकर अपनाना इनका मकसद है। “वक्त के साथ-साथ नारीवाद कई रूपों में विकसित हुआ, जैसे रैडिकल नारीवाद, समाजवादी नारीवाद, उदारवादी नारीवाद, मार्क्सवादी नारीवाद, अश्वेत नारीवाद,

लेस्बियन नारीवाद आदि ।"[1] सोच और कर्म में संशोधन से ही विकास संभव है । समय की माँग के मुताबिक नारीवाद करवट बदलता रहा ।

पहला चरण

नारी अधिकारों की माँग सबसे पहले यूरोपीय देशों में जागरण के प्रारंभ में हुई । सन् 1776 से लेकर सन् 1783 तक अमरीकी क्रांति हुई । इसमें एबिगेल एडम्स और मर्सी वारेन के नेतृत्व में महिलाओं ने पहली बार अपने अधिकारों की माँग की, जैसे मताधिकार, सामाजिक समानता तथा सम्पत्ति में अधिकार । लेकिन इनकी आवाज़ को दबाया गया । पर फ्रांसिसी क्रांति के दौरान यह फिर से जी उठी । इसने लोगों का ध्यान समता की ओर खींचा, खासकर महिलाओं का । नारी मुक्ति के इस पहले चरण में उदारवादी लहर चली । इसमें व्यक्तिवाद को महत्व दिया गया यानी प्रत्येक मानव का अपना महत्व दिया गया । इसमें नारी की स्वतंत्रता, न्याय और समानता को महत्वपूर्ण मुद्दा बनाया गया । इसके अंतर्गत आनेवाले कुछ नारीवादी हैं- मेरी वाल्स्टानक्राफ्ट, जॉन स्टुअर्ट मिल , बेट्टी फ्रीडन आदि । इन्होंने नारीवादी आदर्शों को मानवतावादी सिद्धांतों के साथ जोड़ दिया ।[2] इन्होंने सरकारी कदमों और वैधानिक मार्गों को नारी स्वतंत्रता और समानता हासिल करने का ज़रिया माना । उदारवादी नारीवाद ने नारी के नागरिक अधिकार की माँग पर पूरा ज़ोर दिया क्योंकि उनका विश्वास था कि इन अधिकारों के

---

[1] It has grown into several 'feminism' such as radical feminism, socialist feminism, liberal feminism, marxist feminism, black feminism, lesbian feminism etc. ; श्रीमती बी.आर अग्रवाल, फेमिनिन सैकी(सं)नीरु टंडन, पृ.सं 93

[2] नीरू टंडन, फेमिनिज़म, पृ.सं-41,

माध्यम से राज्य के मामलों में भागीदार बन सकती है। इस भागीदारी से ही देश की संपूर्ण उन्नति संभव हो सकती है।

नारीवाद की पृष्ठभूमि में इंगलैंड की ***मेरी वालस्टानक्राफ्ट*** का ज़िक्र किए बगैर नहीं रह सकते, क्योंकि उन्हें अकसर यूरोपीय और अमरीकी नारीवादी आंदोलन की जननी के रूप में माना जाता है। उन्होंने अपनी पूरी ज़िन्दगी औरतों के अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए बिता दिया। उन्होंने नारी शिक्षा पर बहुत अधिक ज़ोर दिया। इसी को आधार बनाकर सन् 1787 को ' थोट्स ऑन एजुकेशन ऑफ डॉटर्स ' नाम से एक पुस्तक लिखीं। 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही वे यह पहचान गई थीं कि स्त्री शिक्षा कितना महत्वपूर्ण है। कच्ची उम्र में ही लड़कियों को इस तरह ढालने की नीति थी कि वे अधीनता से मुक्ति के बारे में कभी सोचे ही नहीं। इसलिए उन्होंने पारम्परिक शिक्षा प्रणाली की तीखी आलोचना की और तर्क सहित यह स्थापित किया कि नारी कभी भी बौद्धिक स्तर पर और तार्किक स्तर पर पुरुष से पीछे नहीं है। विश्व के महान वैज्ञानिक मेरी क्यूरी, जिन्होंने दो अलग विषयों में नोबल सम्मान हसिल की थीं, यह सबित करती है कि मेरी वाल्स्टानक्राफ्ट का विचार सोलह आने सच है। मेरी वाल्स्टानक्राफ्ट ने शिक्षा, काम और राजनीति में स्त्रियों को पूर्ण समानता दिए जाने की माँग की। सन् 1792 में उनकी किताब 'ए विंडीकेशन ऑफ दी राइट्स ऑफ वुमन' ने तहलका मचा दिया। "अपने समय के जोश और उनके रेडिकल लेखकों के दल से प्रभावित होकर उन्होंने 'ए विंडीकेशन ऑफ दी राइट्स ऑफ वुमन' लिखा।"[1] इंगलैंड ही नहीं, इंगलैंड के बाहर पूरे यूरोप, अमरीका पर भी इसका असर पड़ा। असल में इसमें नारीवादी आंदोलन की सारी माँगों को पूर्वानुमानित किया गया था। जैसे शिक्षा, कानूनी प्रतिनिधित्व, मताधिकार, सम्पत्ति

---

[1] Mary Wollstonecraft, influenced by the revolutionary fervour of the time, and by her group of radical writers......... wrote A Vindication of the rights of Woman, सुशीला सिंह, फेमिनिज़्म थियरी, क्रिटिसिस्म, अनालिसिस; पृ.सं-50

का अधिकार, व्यवसायों में प्रवेश आदि । स्त्री हर चरण में स्वतंत्रता ही चाहती है । अतः उन्होंने स्त्री प्रश्न को एक बुनियादी प्रश्न बना दिया । यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सामंतवाद से लैस समाज में अगर एक स्त्री इस तरह से खड़ी होगी तो उसे क्या-क्या सहना पड़ा होगा । "मेरी वालस्टानक्राफ्ट की छोटी सी ज़िन्दगी अपने आप में धारा के विरुद्ध खड़ी एक बहादुर औरत की त्रासद महाकाव्यात्मक गाथा थी ।"[1] सभी स्त्रियों के सामने यह मिसाल कायम करती है कि स्त्री में पूरे समाज को बदलने की ताकत है ।

मेरी वालस्टानक्राफ्ट की अगली कड़ी के रूप में ***विलियम थोम्पसन*** को गिनाया जा सकता है । इन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि नारी की आर्थिक स्वतंत्रता ही उसकी वास्तविक स्वतंत्रता है । उन्होंने नारी के समान बौद्धिक क्षमताओं पर पूरा विश्वास रखा, साथ ही उनके राजनीतिक अधिकारों के पक्षधर थे । उनका यह मानना था कि महिलाओं को समान अधिकारों की प्राप्ति तभी हो सकती है जब समाज का आधार निजी सम्पत्ति और प्रतियोगिता से हटकर साझा मिल्कियत बन जाए ।

स्त्री जागरण में एकल योगदान देनेवाले अगले शख्स है-जॉन स्टुअर्ट मिल । इन्होंने नारी का इच्छित व्यापार या व्यवसाय चुनने के अधिकार पर ज़ोर दिया । नारी का मताधिकार भी उनके लिये मुख्य था । यही नहीं, वे नारी का, कला के अभ्यास करने की आज़ादी के भी पक्षधर थे । उनका यह अटल विश्वास था कि समाज का पूर्ण विकास तभी हो सकता है जब हर एक व्यक्ति आज़ाद हो । इसलिए नारी की स्वतंत्रता पर इतना अधिक बल दिया । उनके ये सारे विचार 1869 की उनकी पुस्तक 'दी सब्जेक्शन ऑफ वुमेन' में मिलते हैं । उनकी इस रचना ने सच में पूरे समाज में खलबली मचा दी, क्योंकि इसमें परिवार रूपी संस्था की कटु आलोचना की गई है । उनका विचार था कि परिवार

[1] मीनाक्षी, स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन , पृ.सं-23

में पुरुष वर्चस्व से वहाँ पर पल रहे लड़कों पर इसका बुरा असर पड़ेगा। इससे बदलाव कभी नहीं आएगा। पुरुष के दबंग में औरत दबी ही रहेगी।

नारी अधिकार का एक संगठित आंदोलन या जन अभियान की शुरुआत अमरीका में हुई थी। एलिज़ाबेथ केडी स्टैंटन यह मानते थे कि नारी जिन-जिन असमानताओं को सह रही है (जैसे, आर्थिक-सामाजिक-कानूनी), उन सबके उन्मूलन का एक ही उपाय है- मताधिकार की प्राप्ति। इस मत से कई औरतें सहमत थीं। इसलिए वे सन् 1848 में न्यूयोर्क के सेनिका फॉल्स नामक एक गाँव में जमा हुईं और *सेनिका फॉल्स डिक्लरेशन आंड रेसेल्यूशनस* पर हस्ताक्षर डालने के लिये आवाज़ बुलन्द की। पर 72 वर्ष के पश्चात् ही यह सपना सच हुआ। सन् 1920 में 19वाँ संशोधन पारित हो जाने के बाद ही विचार और संकल्प की घोषणा,(डिक्लरेशन ऑफ सेंटिमेंट्स आन्ड रेसोल्यूशन) एक व्यावहारिक घोषणा-पत्र बन गया। कई सालों के बाद ही चारलोट वुडवार्ड पीयर्स को अमरीका के राष्ट्रपति- चुनाव में मत डालने का हक मिला।[1] मताधिकार की प्राप्ति वाकई नारी आंदोलन का एक मोड़ था।

उदारवादी नारीवाद की सबसे बड़ी कमी यह थी कि नारी की निजी ज़िन्दगी से वह अनछुआ रहा। उसने नारी की आम समस्याओं को ही मद्देनज़र रखा। 20वीं शताब्दी के पहले के आधे हिस्से में नारी की कई माँगें पूरी हुई पर कई महत्वपूर्ण माँगें अभी बाकी थीं जैसे समान अवसर प्राप्त करना, असमानता को मिटाना आदि। पुरुषों ने नारी का शारीरिक तथा लैंगिक उत्पीड़न करके उसे आतंक में जीने के लिए मजबूर किया है इसलिए इनका यह मानना था कि पुरुषों से अलगाव कायम करना ही उचित है और पुरुष- वर्चस्व की जड़ों को मिटाने केलिए इनका एक आंदोलन के रूप में आना बहुत ज़रूरी है। वे विलिंगीकामुकता पर विश्वास नहीं करते और नारी को पारंपरिक स्त्री रूप,

---

[1] सुशीला सिंह, फेमिनिज़्म थियरी, क्रिटिसिस्म, अनालिसिस; पृ.सं- 12

बच्चे जनने की मशीन आदि के रूप में नहीं देखते । शुलैमिथ फायरस्टोण, केट मिल्लट आदि नारीवादियों ने स्त्री की मुक्ति जैविक क्रांति में माना है । समाज में लिंग भेद पुरुष सत्ता की वजह से ही बरकरार है । विवाह नामक संस्था पर सवालिया निशान लगाया । प्रेम, विवाह आदि ऐसी संस्थाएँ हैं जो स्त्री को हमेशा निर्भर बनाता रहता है, खासकर तब जब वह माँ बनती है । आधुनिक तकनीकों से गर्भ धारण न करने का सुझाव पेश किया । इन सभी बातों का पालन करने से ही स्त्री-पुरुष की बराबरी कर सकती है ।[1] लिंग दमन से छुटकारा पाने केलिए लेस्बियन संस्कृति उभरने लगी । नारी का लेस्बियन बनना ही उचित माना गया । इस तरह लेस्बियन आंदोलन नारी आंदोलन में स्थान ग्रहण करता गया । वे इस बात पर अड़े रहे कि नारी तभी मुक्त हो सकती है जब वह जैविक प्रकृति से ऊपर उठे । सरल शब्दों में कहे तो इन्होंने संतान उत्पत्ति को बोझ माना ।

उदारवादियों ने मुख्य रूप से नारी के समान राजनीतिक अधिकारों पर ज़ोर दिया । पर कुछ नारीवादियों को लगा कि सिर्फ राजनीतिक अधिकार पाने से नारी की मुक्ति पूर्णत: संभव नहीं होगी । इसके लिए सामाजिक परिवर्तन भी बहुत ज़रूरी है । यही सोच समाजवादी नारीवाद की नींव बनी । इसका आधारभूत ग्रंथ था सन् 1884 में फ्रिडरिक एंजेल्स कृत 'द ऑरिजिन ऑफ द फामिली, प्राइवेट प्रोपर्टी एण्ड द स्टेट' । समाजवादी नारीवाद की सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह यौन उत्पीड़न के साथ वर्ग उत्पीड़न को भी जोड़कर देखती है । परंपरागत मार्क्सवादी मानते हैं कि वर्ग संघर्ष के ज़रिए पूँजीवाद की समाप्ति में ही महिला मुक्ति है ।[2] अर्थात् पूँजीवाद और व्यक्तिगत सम्पत्ति के उदय को नारी दमन और उनके अधिकारों के हनन का कारण माना गया । पुरुष नारी को उसकी निजी संपत्ति मानता है । समाज में पैसा ही बहुत कुछ होता है । पर नारी के हाथ में इसकी कमी होती है क्योंकि उसके द्वारा किए जानेवाले घरेलू काम

---

[1] नीरू टंडन, फेमिनिज़म, पृ.सं-44
[2] वही, पृ.सं-46

पैसों में तब्दील नहीं होता जबकि पुरुष बाहर से पैसा कमाकर लाता है । इसके अलावा सम्पत्ति में भी उसका कोई अधिकार नहीं होता । इसलिए समाजवादी नारीवाद नारी की आर्थिक स्वतंत्रता की माँग करता है । उन्होंने पितृसत्ता की सांस्कृतिक एवं विचारधारात्मक जड़ों को उखाड़ फेंकने की माँग की ।[1] अत: आधुनिक समाजवाद ने पुरुषवर्चस्व और पूँजीवाद दोनों का कड़ा विरोध किया ।

"समाजवादी नारी आंदोलन की इस स्पष्ट सैद्धांतिक अवधरणा की पृष्ठभूमि में ही 1917 में नवंबर क्रांति हुई । रूस में इस क्रांति के वक्त ही महिलाओं को राजनीतिक और नागरिक अधिकार दिए जाने की घोषणा कर दी गई थी । इसके बाद अलक्ज़ेन्दा कोलोंताई को समाज कल्याण मंत्री बनाया गया । उन्होंने सबसे पहला काम यह किया कि महिलाओं को विवाह के मामले में पूर्ण कानूनी स्वतंत्रता तथा समानता प्रदान की जाए । गर्भपात को कानूनी बना दिया तथा समान काम केलिए समान वेतन का सिद्धांत लागू किया । उन्होंने ही प्रसूति तथा शिशु स्वास्थ्य के लिए सरकार द्वारा सुविधाएँ प्रदान करने की दिशा में कानूनी कदम उठाये ।"[2] 1930 के दशक तक आते-आते औरत की ज़िंदगी में परिवर्तन की लहर दौड़ गई । महिलाओं के लिए शिक्षा और रोज़गार के बंद दरवाज़े धीरे-धीरे खुलने लगे । सन् 1929 में वर्जीनिया वुल्फ की किताब *'ए रूम ऑफ वण्स ओण '* महिलाओं के लिए वाकई प्रेरणादायक रही । उन्होंने इस किताब के ज़रिए यह आह्वान किया कि साहित्य लिखने केलिए एक स्त्री को पैसे और खुद के कमरे की ज़रूरत है (A woman must have money and a room of her own if she is to write a ficton) इस किताब के ज़रिए उन सभी कारणों को परखने की कोशिश की गई है जो एक स्त्री को, लेखिका बनने नहीं देते । वे स्त्री को पेश करने की वस्तु न मानकर, पेश कर्ता के रूप में मानती हैं । सन् 1941 को उन्होंने खुदखुशी कर ली । मृत्यु से पहले वे

[1] घनश्याम राय, नक्सलवादी आंदोलन में महिलाएँ, पृ.सं- 130;
[2] सरला महेश्वरी, नारी प्रश्न, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

लिख गई थीं कि वह परिस्थितियों को झेल नहीं पा रही हैं । एक लेखिका होने के नाते उन्होंने मानसिक संघर्ष झेला है । मलयालम की लेखिका राजेश्वरी की नियति भी वर्जीनिया वुल्फ के समान रही । इन सब के बावजूद यह देख पाएँगे की स्त्रियों ने सशक्त रूप से कलम चलाई । महिलाओं के पक्ष में एक- एक कानून पारित होते गए । इसके फलस्वरूप प्रसूति भत्ता, कार्यक्षेत्र में विशेष सुरक्षा, कानूनी समानता और राजनीतिक अधिकार प्राप्त कर लिये । इन सब से परिवार में नारी की स्थिति कैसे बिना बदले, बिना प्रभावित हुए रहेगी ? अणु परिवार की संख्या दिन ब दिन बढ़ने लगी । इससे एक बात अच्छी हुई कि नारी के काम का बोझ कम हो गया । उसमें पुरुष का हाथ बांटने की ताकत आ गई यानी घर और बाहर की ज़िम्मेदारियों को उठाने का हौसला जगा ।

स्त्री जो कुछ भी चाहती थी, वह पा रही थी । जिन अधिकारों का, वह ख्वाब देखा करती थीं, वे सब हकीकत में बदल रहे थे । इसके साथ ही नारीवादी आंदोलन फ़ीका पड़ गया । समय बीतते-बीतते नौकरीपेशा औरतें इस बात से वाक़िफ होने लगीं कि अधिक वेतन मिलनेवाले कई पदों से वे वंचित हैं । सब कुछ पाकर भी कुछ न पाने की भावना महिलाओं के मन में उठने लगी । यह भावना उनके मन में कई सवाल पैदा करने लगी कि अब भी उनके साथ अन्याय क्यों हो रहा है ? क्यों औरत मौके का फ़ायदा उठा नहीं पा रही है ? क्यों समाज में असमानता का दाग़ मिट नहीं रहा है ? क्यों समान काम के लिए समान वेतन नहीं दिया जा रहा है ? उन्हें दिए गए अधिकार एवं आज़ादी क्या सिर्फ कागज़ी बुर्ज़ है ?......इन्हीं सवालों ने सन् 1960 में नारीवाद को एक नए रूप में उभारा, जिसने फिर से शैक्षिक और रोज़गार के स्तर पर स्त्री- पुरुष के बीच के भेदभाव को मिटाने की माँग उठाई ।

दूसरा चरण

यह एक ऐसा दौर था जब स्त्रियों ने खुलकर बोलना शुरू किया । आधुनिक नारीवाद के विकास का, पहला मील का पत्थर था, सन् 1949 में प्रकाशित सिमोन द बोउआ की रचना 'दि सेकण्ड सेक्स' । उन्होंने आमूल रूप से परंपरागत समाज में नारी-स्थिति और भूमिका पर प्रश्न चिह्न डाला । साठ के दशक में पश्चिम में हर कहीं पुरुष वर्चस्ववाद के विरुद्ध लहर उठी । इसमें नारीवादियों ने परिवार एवं विवाह की संस्था पर प्रश्नचिह्न लगाया । यहाँ तक कि उसे स्त्री की दासता का मुख्य कारण माना । 'तलाक' चर्चा का विषय बन गया । सन् 1960 तक गर्भ-निरोध और संतान नियंत्रण के जिन अधिकारों से नारी वंचित थी, उन्हें भी हासिल कर लिया । नारीवादियों की यही माँग थी कि गर्भ-निरोधक गोलियाँ और अन्य तरीकें सुरक्षित और सस्ते हों । उनका यह भी मानना था कि नारी तब तक आर्थिक रूप से पूर्णतः स्वतंत्र नहीं हो पाएगी जब तक वह प्रजनन पर नियंत्रण नहीं रखेगी क्योंकि इससे नारी अनचाहे गर्भ से मुक्त हो सकेगी । इस तरह की पृष्ठभूमि के साथ अस्सी के दशक में प्रवेश करते हुए महिला मुक्ति के महासंग्राम ने एक नया रूप ले लिया । नब्बे के दशक तक आते-आते 'गर्भपात' भी नई चेतना के रूप में विश्व मंच में स्थापित हो गई । नारीवादियों ने स्त्री को एक स्वतंत्र व्यक्ति की हैसियत का जामा पहनाया । पत्नी, बेटी आदि रूपों को स्त्री का स्थाई रूप मानने में अपना एतराज़ प्रकट किया । अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए और अपने हक से अवगत होने के लिए नारीवादियों ने स्त्री को एक बड़े दल में इकट्ठा किया । सरल शब्दों में कहे तो सन् 1960 के बाद नारीवादियों का विचार और गहरा होता चला गया । नारी के राजनीतिक, सामाजिक जीवन या आर्थिक अवस्था के चिंतन के साथ ही स्त्री-लैंगिकता पर भी विचार किया जाने लगा । इन सबमें मौजूद पितृ सत्तात्मकता के प्रभाव का नामो-निशान मिटाना इस दौर के नारीवादियों का लक्ष्य रहा । सन् 1963 में प्रकाशित बेट्टी फ्राइडन की पुस्तक 'द फेमिनिन मिस्टीक' नारी मुक्ति आंदोलन के लिए

एक और नई दिशा थी । उन्होंने नारी का स्त्रैण भाव और घरेलू जीवन को सार्वजनिक जीवन में प्रवेश पाने केलिए बाधक माना । उन्होंने सन् 1966 में पूरे विश्व में पहली बार नारी संगठन की स्थापना की -नेशनल आर्गेनाइज़ेशन ऑफ विमेन ।[1] सन् 1970 में प्रकाशित जर्मेन ग्रियर की 'द फीमेल एनख' में उन्होंने लैंगिकता की आज़ादी (Sexual Liberation) की माँग की है । इस तरह की कई ज़बरदस्त किताबों ने लिंगवाद पर खुलकर चर्चाएँ कीं । इसी तरह के सिद्धांतों ने समलैंगिकता पर चर्चा करने केलिए मंच तैयार किया । समलैंगिक संबंधों में शारीरिकता ही सब कुछ नहीं होता । यह तो कुछ ज़्यादा ही भावुक संबंधों का अंग होता है । यहाँ अपने अहं का आत्मसमर्पण मुख्य होता है । एक पुरुष के सामने आत्मसमर्पण करने से बेहतर है खुद से समानता रखने वाले लिंग के सामने करना । यहाँ पर भी वही मुद्दा उठा- पुरुष से मुक्त होना- जो कि नारीवाद का भी लक्ष्य था । सम-लैंगिकतावादी दो संकटों का शिकार बनते हैं । एक तो नारी होने के कारण और दूसरा समलैंगिक होने के कारण ।[2] पर उन्होंने विलिंगवाद का डटकर विरोध किया । क्योंकि उनका मानना था कि नारी के दमन का कारण यही था । यह एक ऐसी स्त्री है जो अपनी पूरी ताकत दूसरी स्त्री के लिए इस्तेमाल करती है और कभी भी पुरुष के नाम से पहचाना जाना नहीं चाहती । वह एक स्वतंत्र नारी का स्वरूप है ।

तीसरा चरण

1980 तक आते-आते नारीवादी वैश्विक और सांस्कृतिक मुद्दों पर ज़ोर देने लगे । इनका यह मानना था कि दूसरा चरण उच्च मध्य-वर्ग की गोरी स्त्रियों की अनुभूति को ही ज़्यादा महत्व देता था, पुरुष- विरोधी था, स्त्री-पुरुष के बीच के यौन संबंध के खिलाफ था, विवाह जैसी संस्थाओं के आगे प्रश्नचिन्ह लगाया, सौन्दर्य- बोध को छोड़ने की सलाह

---

[1] बेट्टी फ्राइडन, द फेमिनिन मिस्टीक, पृ.सं 139

[2] नीरू टंडन और प्रीती तिवारी, फेमिनिन सैकी, (सं)नीरु टंडन ,पृ.सं-117

देता था। 1980 के बाद नारीवाद का तीसरा चरण शुरू हुआ। वास्तव में दूसरा चरण इसकी मातृ-पीढ़ी थी। तीसरे चरण के लोगों को पूर्व-पीढ़ी के समान अपने अस्तित्व, या समानता को साबित करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। ये सब तो दूसरे चरण की माँगें थीं जिन्हें बहुत हद तक हासिल भी की जा चुकी थीं। यह कंप्यूटर, मीडिया जैसे तकनीकों से भरा एक नाज़ुक दौर है। इसलिए इसके सदस्य एक ऐसा नारीवाद चाहते थे जो आज की समस्याओं से मुखातिब करने में शक्ति प्रदान करता है। इस समय के नारीवादी स्त्री-पुरुष के संबंध के खिलाफ़ नहीं थे , बल्कि वे पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने के पक्षपाती हैं। यौन- संबंध स्थापित करने में आज़ादी देता है। इस दौर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सभी स्तरों की स्त्रियों को अपने में शामिल करता है, यानी विभिन्न धर्म, जाति या आर्थिक- स्थिति के होने से तीसरे चरण पर कोई फर्क नहीं पड़ता। सन् 1980 तक आते-आते अश्वेत नारी भी जागृत होने लगी। इन्होंने अनंत काल की चुप्पी को तोड़ दिया और अपने कालेपन या भूरेपन और नारीत्व के द्वारा दुनिया के सामने अपना वजूद दिखा दिया। अश्वेत नारी अश्वेत पुरुष के साथ मिलकर नस्लवाद के खिलाफ लड़ती है तो अश्वेत नारी मिलकर अश्वेत पुरुष के खिलाफ लिंगवाद पर लड़ती है।[1] इस संदर्भ में आलिस वाकर का ज़िक्र किया जा सकता है जिन्होंने काले वर्ग की नारी पर काले वर्ग के पुरुष की तथा अभिजात वर्ग के स्त्री-पुरुष की ज़्यादतियों पर धमाकेदार ढंग से कलम चलाई। *'विमेनिसम'* शब्द आलिस वाकर द्वारा निर्मित है। *विमनिसम* में *फेमिनिसम* समाविष्ट होता है। इसी को समझाने केलिए वे कहती हैं- Womenist is to feminist as purple is to lavender. *फेमिनिसम*, *विमेनिसम* के सैद्धांतिक छाते के अंतर्गत आ जाता है। आलिस वाकर जैसे लोग स्त्री और पुरुष दोनों के कल्याण के लिए प्रयत्नरत है। इससे काले वर्ग के पुरुषों की सहायता काले वर्ग की स्त्रियों को मिल जाती है

---

[1] नीरू टंडन, फेमिनिसम, पृ.सं- 62

। वे सर्वमुक्तिवादी बन जाते हैं । वक्त बीतते-बीतते नारीवाद का यह रूप व्यापक होता गया क्योंकि बहुत से कार्यकर्त्ताओं को लगा कि नारीवाद का आम रूप अश्वेत स्त्री की दुर्दशा का अंत नहीं कर पा रहा है । *विमेनिसम* या *ब्लैक फेमिनिसम* जातिगत, वर्गगत और साथ ही लिंगगत दमन को केंद्रित करता है । राजनीति के प्रति तीसरे चरण का दृष्टिकोण थोड़ा विस्तृत हो गया । राजनीति में बड़े-बड़े पदों के लिए कड़ा परिश्रम किया गया । नारीवाद, स्त्री विषय से हटकर अन्य विषय की ओर भी सजग होने लगा । क्योंकि स्त्री के माहौल बदलने के साथ ही स्त्री की समस्याएँ भी बदलने लगीं ।

महिला मानवाधिकार का प्रश्न

पृथ्वी की गोद में सम्मानित जीवन बिताने का अधिकार सभी को है । यह हर एक का जन्मसिद्ध अधिकार है । यह संविधान द्वारा स्वीकृत भी है । फिर भी जाति, धर्म, लिंग आदि कई भिन्न रूपों में मनुष्य-मनुष्य के बीच में दीवारें खड़ी हैं । ऐसा क्यों ? महिलाओं के संदर्भ में यह सवाल उठ खड़ा होना जायज़ है कि एक ही गर्भ से निकले लड़की-लड़के के बीच भेदभाव क्यों बरता जाता है ? बहुत सारे लोगों के मन में ऐसे ढेर सारे सवाल उमड़े जिसका नतीजा है मानवाधिकार की प्रतिष्ठा ।

मानवाधिकार का विचार मानव और अधिकार के बीच के संबंध को दृढ़ बनाता है । "मानवाधिकार प्रत्येक व्यक्ति के मूलभूत अधिकार हैं, जो नैसर्गिक, सार्वभौम तथा अविभाज्य हैं । यह वह अधिकार है जिसमें प्रत्येक मानव को सम्मानित जीवन जीने की स्वतंत्रता का हक और अपने पसंद की स्वतंत्रता और गरिमा प्राप्त करने का अधिकार है।"[1] अर्थात् यह हर किसी के जीवन में स्वतंत्रता, समता, और गरिमा का प्रकाश फैलाता है । इसको भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखते समय उस मानवाधिकार के आगे एक बड़ा सा प्रश्न

[1] पुलिस कर्मियों के लिए मानव अधिकारों पर ऑनलाइन प्रशिक्षण , राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत तथा इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में प्रस्तुत ,पृ.सं- 3

चिह्न लग जाता है । क्योंकि जहाँ जाति उसके विराट रूप में खड़ी हो वहाँ सामाजिक न्याय और अधिकार का मामला केवल संभ्रांत वर्ग की स्त्रियों तक सीमित हो जाता है । " जो समाज जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर टिकी हुई असमानताओं से भरा हुआ है, उसमें औरतों के प्रति समानता और न्याय पर टिका हुआ व्यवहार हासिल करना एक लंबे संघर्ष की अपेक्षा रखता है ।"[1] यहाँ स्त्रियों को एक जात के रूप में एक छत के नीचे लाना भारतीय परिदृश्य में भगीरथ प्रयत्न है ।

अधिकार से मानवाधिकार तक महिला की यात्रा का विश्लेषण करें तो जानेंगे कि महिलाओं ने अपने अधिकारों की माँग सबसे पहले फ्रांसीसी क्रांति के दौरान ही की थी । 1789 के दस्तावेज़ 'पुरुष और नागरिक अधिकार की घोषणा' के अनुसरण में 1791 में फ्रांसीसी नाटककार और राजनीतिक कार्यकर्ता ओलिम्पी द गूजे ने 'स्त्री और स्त्री के नागरिक अधिकारों की घोषणा' का प्रकाशन किया । इस तरह उन्होंने तत्कालीन समाज में मौजूद सत्ता के विरुद्ध आवाज़ उठाई और यह माँग उठाई कि स्त्री के भी एक नागरिक के रूप में अधिकार हैं । "ओलिम्पी द गूजे (1748-1793) ने 1791 में राष्ट्रीय असेम्बिली में एक ऐतिहासिक दस्तावेज़- 'स्त्री और स्त्री के नागरिक अधिकारों की घोषणा' तैयार की । उसमें स्त्रियों पर पुरुषों के शासन का विरोध करते हुए सर्वाधिक मताधिकार को अमल में लाने केलिए स्त्री-पुरुष के बीच पूर्ण सामाजिक राजनीतिक समानता की माँग की गई थी ।" [2] उनका यह भी मानना था कि स्त्री और पुरुष के बीच में क्षमता और प्रतिभा के अलावा और किसी तरह का भेदभाव नहीं होना चाहिए ।

इनके बाद आई अमरीकी लेखिका मेरी वाल्स्तानक्राफट ने 1792 में 'ए विंडिकेशण ऑफ दि राएट्स ऑफ वुमेन' प्रकाशित किया । वे लिंग भेद के सख्त खिलाफ

---

[1] सरला महेश्वरी, नारी प्रश्न , पृ.सं- 97

[2] मीनाक्षी, स्त्री अधिकारों की औचित्य साधना (अनुवाद) ; मेरी वोल्स्टनक्राफ्ट, A Vindication of the rights of women) पृ.सं-15

थीं। इन्होंने स्त्री शिक्षा पर बहुत अधिक ज़ोर दिया। यानी स्त्री एक नैतिक एवं विवेकी प्राणी होने के कारण शैक्षिक स्तर पर समान अवसर लाना चाहती थीं। इन दो लेखिकाओं की लेखनी आधी आबादी के अधिकारों केलिए आवाज़ बनी।

स्त्री अधिकार के लिए पुरुषों ने भी भरपूर साथ दिया था। इसका उत्तम उदाहरण है- जॉन स्टुअर्ट मिल। इन्होंने महिला मताधिकार केलिए पूरी जान लगा दी। इन्होंने 'मर्द' से 'मनुष्य' बनाने का प्रस्ताव रखा। यद्यपि इस प्रस्ताव की हँसी उड़ाई गई, मगर संशोधन की इस कोशिश ने ब्रिटन में स्त्री मताधिकार के मुद्दे की ओर ध्यान आकर्षित कराया।

भारत में स्त्री

पूरे विश्व में स्त्री ने अपनी अस्मिता और अधिकार केलिए लड़ाई लड़ी और वह लड़ाई आज भी ज़ारी है। भारत में भी स्थिति भिन्न नहीं है। पर भारत में तो वैदिक काल से ही स्त्री केलिए एक सम्मानपूर्वक स्थान निश्चित था। ज्ञान, सम्पत्ति और शक्ति का मूर्त रूप स्त्री का है। उसे मूक रूप में बिठाना ही सबको अभीष्ट है। इससे यह साबित होता है कि स्त्री के पास सब कुछ है पर प्रयोग में लाने का अवसर नहीं दिया जाता। समाज में प्रत्येक धर्म और जाति की शुद्धता को सुरक्षित रखने केलिए स्त्री शरीर की शुध्दता पर ज़ोर दिया जाता है। एक ज़माने तक विधवा पुनर्विवाह पर पाबंदी लगायी जाती थी पर विधुर पुनर्विवाह केलिए अनगिनत वातावरण मौजूद थे। 'पतिव्रता' धर्म पर ज़ोर दिया जाता है पर 'पत्नीव्रता' जैसे पद ही प्रयोग में नहीं है। भाषा में भी स्त्री-पुरुष के बीच भेदभाव द्रष्टव्य है। 'पहाड़', 'सागर'- ये दोनों पुल्लिंग शब्द है और 'नदी'- स्त्रीलिंग शब्द है ; 'नदी पहाड़ से निकलती है और सागर में मिल जाती है'। अर्थात् पुरुष ही सब कुछ है। स्त्री केलिए अलग कोई पहचान नहीं है। वास्तव में इस दमनकारी

माहौल से स्त्री को उभारना ही नारीवाद का लक्ष्य है । यही प्रयास स्त्री विमर्श के ज़रिए भी होता है ।

पुरुष-वर्चस्व

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुरुष का शासन होता है और हर बात उनके अनुकूल होता है । ऐसी व्यवस्था में स्त्रियों और बच्चों और सम्पत्ति पर पिता का अधिकार होता है । अर्थात् यह स्त्री को दबाकर रखनेवाली व्यवस्था है । स्त्री शरीर पर पुरुष का नियंत्रण पितृसत्तात्मक समाज का एक पहलू है । स्त्री के सपनों का लगाम पुरुष के हाथों में होता है । राडिकल नारीवाद समाज में मौजूद सभी भेदभाव की जड़ पितृसत्ता को मानता है । भारत में भी जब स्त्री, अपनी बदहालत को परखने लगी तब उसे समाज में मौजूद पितृसत्ता ही सबसे बड़ा कारण लगा । "इसमें दो राय नहीं कि पुरुष-प्रधान भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्रियाँ लंबे अर्से से बहुआयामी शोषण का शिकार होती रही है चाहे वे अगड़ी हो या पिछड़ी ।"[1] अकसर परिवार के ज़रिए ही पुरुष अपना आधिपत्य प्राप्त करता है ।

नारीवाद हमेशा पुरुषसत्ता को अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था ही मानता है । जैविक कारणों से ज़्यादा सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों से पुरुषसत्ता कायम है, जिसकी वजह से यह पीढ़ी दर पीढ़ी सघन होता जा रहा है । आज के स्त्री-पुरुष संबंध को समझने केलिए पीछे मुड़कर देखना ज़रूरी है । वास्तव में यह एक बड़ा किस्सा है । आदिमानव, दिन ब दिन अपने को विकसित करता रहा । अपनी सुख-सुविधा के लिए दुनिया का नक्शा बदलता रहा । वह अपनी जान जोखिम में डालकर खुद को और अपनों

[1] रमणिका गुप्ता, स्त्री-विमर्श कलम और कुदाल के बहाने, पृ.सं- 34

को हर मुसीबत से बचाने लगा । जान लेने केलिए भी वह कतराता नहीं था । "यही कारण है कि श्रेष्ठता मिली पुरुष को, जो मर सकता था एवं मार सकता था । औरत तो केवल बच्चे को जन्म दे सकती थी ।"[1] अत: जीवन देने से ज़्यादा ज़िन्दगी को कायम रखने की जतन को एहमियत मिली । स्त्री के मातृत्व ने स्त्री को बंधन में जकड़ लिया । ज़ाहिर है कि अब सत्ता पुरुष के हाथ में आ गया । उसने जो मूल्य, धर्म, आचरण बनाए, सब अपनी सुविधा के अनुसार थे । स्त्री ने कभी पुरुष के एकाधिपत्य को चुनौती नहीं दी, और अगर दी भी तो उसे उतना ही अधिकार दिया जितना वह चाहता था । वह नए-नए मूल्य गढ़ता गया और उसे औरतों पर ज़बरदस्ती थोपता गया । वह तय करने लगा कि औरत कैसे जिए । जब औरत इस स्थिति से अपने आपको अनुकूलित करती गई, तब से धीरे-धीरे उसकी ज़िन्दगी की डोर पुरुष के हाथों में आने लगी । एक ओर वह मुश्किल से मुश्किल काम करता रहा, तो दूसरी ओर औरत को अपना गुलाम बनाता रहा । सीमोन दि बोआ ने अपनी किताब 'दि सेकेंड सेक्स' में लिखा है कि शायद मानव के प्रारंभिक दौर में वह इस बात से अनभिज्ञ था कि बच्चे के जन्म में पुरुष की भी एक महत्वपूर्ण भागीदारी है । इसलिए वंश भी माँ के नाम से चलता था । उस ज़माने में वह स्त्री और प्रकृति में भेद नहीं करता था । "स्त्री धरती की तरह थी, उतनी ही रहस्यमय ।"[2] इसी वजह से स्त्री एक शक्ति के रूप में छाई हुई थी, कभी वह निर्माता बनी तो कभी विनाशिनी । अत: पुरुष के मन में एक श्रद्धा युक्त भय समाया हुआ था । इससे यह बात साबित होती है कि उस समय मातृसत्तात्मक समाज कायम था ।

पुरुष जब जन्म का रहस्य जान गया तब स्थिति का काया पलट हो गया । अब स्त्री की हैसियत मवेशियों के समान बन गई । अब औरत के हाथ में न सत्ता थी न सम्पत्ति । उसके चारों ओर रूढ़ियों का बेल कसने लगा । वह पूरी तरह से पुरुष की

---

[1] प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता , पृ .सं- 50
[2] वही, पृ.सं- 51

मुहताज बन गई । पितृसत्तात्मक समाज में औरत पुरुष की एक सम्पत्ति थी इसलिए अब उससे पतिव्रता बनने और कौमार्य भंग न होने की उम्मीद की जाने लगी । पर गौर करने की बात यह थी कि ये सब बातें पुरुषों पर लागू नहीं होती थीं । वह एक से अधिक स्त्री को अपनी पत्नी बना सकता था और इसके अलावा कई स्त्रियों से संभोग कर सकता था । पर बेचारी औरत पर व्यभिचारिणी की कालिख पुती जाती । यानी पुरुष का पुरुषार्थ स्वार्थ का प्रतिरूप बनता गया ।

समाज में स्त्री संबंधी कई प्रथाएँ उभरने लगीं । जैसे-

क) नियोग की प्रथा, यानी पति के न रहने से या पति से पुत्र न उत्पन्न होने से देवर या पति के गोत्र के किसी भी व्यक्ति से संतान उत्पन्न करना ।

ख) सती प्रथा, यानी पति की चिता में पत्नी का कूदकर प्राण त्यागना। "यह भव्य और शानदार आत्महत्या और कुछ नहीं, बस एक सामंती फ़ाशन था ।"[1] समाज में फैलती इन प्रथाओं को पूर्ण रूप से स्त्रियों को भुगतना पड़ता था । सती का अनुष्ठान करनेवाली स्त्री को देवी का पद देकर या सती माँ कहकर पूजा जाने लगा । एक कपट गरिमा या देवत्व प्रदान करके उस प्रथा को आचार बनाये रखने में स्त्रियों की रज़ामंदी भी हासिल कर लिया गया । दौर्भाग्य की बात है कि बड़े पैमाने में स्त्रीवर्ग इस को एक सम्मान के रूप में स्वीकारने लगी ।

जब परिवार बनने लगा, तब पुरुष का मन ज़बरदस्ती एक स्त्री(पत्नी) पर ठहरने की नौबत आ गई । पर मनचला पुरुष यह ज़्यादा दिन सह न सका । उसका मन पर-स्त्री को तलाशने लगा । इस तरह व्यभिचार बढ़ने लगा । यहाँ पर बदनामी होती है तो सिर्फ़ स्त्री की । गलत काम में जब दोनों शामिल हो तो सज़ा सिर्फ़ एक को क्यों ? यौन उत्तेजना के संदर्भ में सुधा अरोड़ा कहती हैं- "औरतों के कारण महान, पवित्र और धार्मिक संत भी अपना संयम खो देते हैं । यह बेहद दिलचस्प स्थिति है कि हमारी संस्कृति और

[1] प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता, पृ.सं- 58

परंपरा में पुरुषों को अपने पर संयम रखना या अपनी इंद्रियों को नियंत्रित करना नहीं सिखाया जाता, बल्कि औरतों को उनकी दृष्टि से दूर जाने पर ज़ोर दिया जाता है, क्योंकि पुरुषों पर किसी तरह के नैतिक पतन की ज़िम्मेदारी नहीं डाली जा सकती !"[1] हमारी संस्कृति और परंपरा इस बात का साथ देती हैं कि पुरुष को अपने इंद्रियों पर काबू रखना बहुत मुश्किल होता है । हमारे पुराणों में भी इस तरह के पुरुष व्यभिचार का समर्थन देख सकते हैं ।

पुरुष वर्चस्व के अध्ययन में यौन संबंधों के प्रति भारतीय समाज के नज़रिये को परखना बहुत ज़रूरी है । पुरुष को किसी भी हद तक माफ़ किया जाता है पर एक स्त्री को ज़रा सा भी छूट नहीं दी जाती । जब स्त्री का कोई कसूर नहीं होता, तब भी स्त्री को गुनहगार के रूप में देखा जाता है । एक-एक बात को सूक्ष्म रूप से विश्लेशित किया जाए तो समझेंगे कि स्त्री आचार संहिताओं की बोझ ढो रही है । "इधर महिलाओं की सुरक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन केलिए कानूनी व सामाजिक प्रावधानों का कोई असर नहीं पड़ा, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता परंतु सुधार की गति धीमी होने का एक मात्र कारण पुरुषों के अंदर पुरुषवर्चस्व की सामंती मानसिकता है ।"[2] दिन-ब-दिन स्त्री के पक्ष में कानून बनते जा रहे हैं या उनका संशोधन किया जा रहा है पर फिर भी स्त्री पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था के जुए तले कराह रही है । भारत में, एक बड़े तबके की स्त्रियाँ जो रूढ़ियों, परंपराओं में आज भी जकड़ी हुई हैं, पुरुषवर्चस्व वाली सोच से मुक्त नहीं हो पाईं । आजकल के स्कूल और कॉलेजों में लड़कियों का यूनिफार्म एक उदाहरण है । एक ओर, पुरुषों की दृष्टि से उनके अंगों को बचाने के नाम पर उनकी आज़ादी को पूरी तरह से नष्ट करने वाले कपड़े, वर्दी के रूप में उनसे पहनाया जाता है, कपड़ों के ऊपर कपडों को लादकर चलने फिरने की आज़ादी उनसे छीन ली जाती है । दूसरी ओर भारत के कई

---

[1] कुरान की नारीवादी व्याख्या ; धर्म के आर-पार औरत, संपादक- नीलम कुलश्रेष्ठ, पृ.सं- 27

[2] डॉ.प्रभा दीक्षित, स्त्री अस्मिता के सवाल, पृ.सं- 64

शैक्षिक संस्थानों में लड़कियों को वर्दी के रूप में छोटे –छोटे स्कर्ट पहनाते हैं । इन लड़कियों के माध्यम से आधुनिक दौर की स्त्रियों को पेश किया जा रहा है । इसमें देखने वाली बात है कि कई ऐसी संस्थाओं के शीर्ष स्थानों पर स्त्रियाँ विराजमान हैं । यहाँ पर महादेवी वर्मा के "राख ही जानती है जलने की पीड़ा" के मत पर प्रश्न चिह्न लगता है । पुरुष वर्चस्ववाले समाज में स्त्री भी पुरुष वर्चस्व की बातें करती है, उसको अमल में लाती है । क्योंकि धर्म, भगवान, अंधविश्वास, नैतिकता, सुरक्षा आदि कई बहाना बनाकर पुरुष ने एक खास सांस्कृतिक वातावरण खड़ा किया है, जिसका पालन करना श्रेष्ठ संस्कार है । तुरंत लड़कियों पर माँ,दादी माँ कई तरह की पाबन्दियाँ लगाती हैं ।

शोषण के विभिन्न आयाम

बहुत सारी ऐसी पीड़ाएँ हैं जो सारे सरहदों को पार कर एक सर्वव्यापक रूप पाती हैं जिसे हर समाज भोगता है । ऐसी पीड़ाओं में स्त्री से जुड़ी पीड़ाएँ प्रमुख हैं । भारत एक विकासशील देश है । इसलिए हर क्षेत्र में स्त्री की भी भागीदारी उसके विकास केलिए निर्णायक होगी । पर भारत में विडंबना की बात है कि एक ओर स्त्री ऊँचे ओहदे पर है तो दूसरी ओर आज भी बहुसंख्यक स्त्रियाँ अवसर रहित ज़िन्दगी बिता रही हैं । अपने स्वार्थ केलिए किसी के साथ अनुचित व्यवहार करना शोषण माना जाएगा । स्त्री लगभग सभी क्षेत्रों में शोषण का शिकार बनती है चाहे वह पारिवारिक हो, सामाजिक हो, आर्थिक हो या राजनैतिक हो । भीड़ का नाजायज़ फायदा उठाकर धक्का देना, अंगों को दबोचना, फबते कसना आदि दैनंदिन बातें हो चुकी हैं । "शारीरिक, मानसिक, सामाजिक उत्पीड़न देनेवाली छेड़खानी की इन घटनाओं को नज़रन्दाज़ नहीं किया जा सकता । इन्हें यौन हिंसा या बलात्कार की ओर ले जानेवाली पहली सीढ़ी कह सकते हैं

।"[1] उत्पीड़न, किसी को जानबूझकर यातना अथवा पीड़ा पहुँचानेवाली क्रिया है । यह शारीरिक या मानसिक भी हो सकती है । स्त्री के द्वारा सामना किए जानेवाले अत्याचार हैं- बलात्कार (घर के अंदर, घर के बाहर, जेल में, कॉलेज के अहाते में), छेड़खानी, विवस्त्र करने के उद्देश्य से छेड़ना, अपहरण, आसिड फेंकना, नव वधु को जलाना, घरेलू हिंसा, दहेज के नाम पर हत्या, यौनांग विकृति, भ्रूण हत्या, बलपूर्वक गर्भपात, बलपूर्वक वेश्यावृत्ति चुनाव, मानव तस्करी, यौन गुलामी, ज़बरदस्ती सती का अनुष्ठान कराना आदि । स्त्री के खिलाफ किए जाने वाले शोषण में धार्मिक भेदभाव बिल्कुल ही नहीं है । इसके लिए, हिन्दु धर्म में मनुस्मृति का उपयोग किया जाता है तो इसलाम में शरीयत का भी उपयोग किया जाता है । एक ओर धर्म, स्त्री के अधिकारों को तहस नहस करता है तो दूसरी ओर पुरुषों को अनियंत्रित अधिकार देता है । अगर यह परखा जाए कि कोख से कब्र तक स्त्री किन-किन हिंसाओं का सामना करती है, तो शोषण के आयाम खुद-ब-खुद साफ हो जाएँगे ।

कोख में

लिंगाधारित गर्भपात, गर्भावस्था में मारपीट की वजह से जन्मजात शिशु पर बुरा असर ।

बचपन में

बाल मज़दूरी, बाल हत्या, बाल विवाह, लिंग विकृति, लैंगिक दुर्व्यवहार, शारीरिक-मानसिक उत्पीड़न, अगम्यागमन, तस्करी का शिकार होना, बाल वेश्यावृत्ति, पोर्णोग्राफी ।

यौवन में

प्रणय निवेदन हिंसा (आसिड फेंकना, बलात्कार) , अगम्यागमन, ज़बरदस्ती, विकलांग स्त्रियों के प्रति दुर्व्यवहार । अध्यापक-गण, इंटर्णल अंक के नाम पर भी छात्राओं

---

[1] आशारानी व्होरा, नारी शोषण, पृ.सं-166

का मानसिक एवं शारीरिक शोषण करना, विश्वविद्यालयों में शोध छात्राओं का मानसिक एवं शारीरिक शोषण करना।

प्रौढ़ावस्था में-

विधवा उत्पीड़न, आर्थिक तंगी के नाम पर विधवाओं का खून, शारीरिक-मानसिक यौन उत्पीड़न, आत्महत्या करने के लिए मजबूर करना।

स्त्री के ऊपर किए जानेवाले अत्याचार-

घरेलू हिंसा –

घरेलू हिंसा के दबोच से कोई नहीं बच सका है, न विकासशील देश और न विकसित देश। यानी, " घरेलू हिंसा की समस्या किसी एक वर्ग तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज के हर तबके में व्याप्त है।" [1] घरेलू हिंसा के कई कारण हो सकते हैं – दहेज, शराब का नशा, पति का पत्नी पर शक, घर के सदस्यों के बीच चुगली आदि। स्त्री के शरीर पर चोट पहुँचाने के लिए मात्र हाथ का ही नहीं, बल्कि कुछ मज़बूत चीज़ों का भी इस्तेमाल किया जाता है, जैसे लोहे की छड़ी, डंडा, चाबुक, ज़ंज़ीर, बेल्ट आदि। इसके अलावा शरीर को गर्म लोहे या सिगरेट से दागा जाता है। इस संदर्भ में अनामिका जी के द्वारा कही बात में सच्चाई नज़र आती है – "कितनी बड़ी विडंबना है कि सिर्फ पुरुष अपनी सहचरी को अपना बॉक्सिंग बैग या पिनकुशन, जड़-सा शॉक ऑब्ज़र्वर या निरे उपयोग की वस्तु समझते हैं- दुनिया भर की भड़ास और यौन कुंठा निकालने का साधन।"[2] घरेलू हिंसा एक स्त्री को मानसिक रूप से अशक्त बना देता है।

दहेज के नाम पर हिंसा-

[1] कुसुम त्रिपाठी, इतिहास रचा है तुमने, पृ.सं-104
[2] अनामिका, मन मांझने की ज़रूरत, पृ.सं- 131

दहेज प्रथा कई तरह की हिंसाओं को जन्म देती है । दहेज की कमी के कारण स्त्री को शारीरिक और मानसिक दोनों तरह की यंत्रणाओं से होकर गुज़रना पड़ता है । या तो ससुरालवाले, घर की बहु को सता- सता कर मार डालते हैं या फिर उसे आत्महत्या करने केलिए मजबूर करते हैं ।

पुत्र-कामना के कारण हिंसा-

भारत, परंपरा को बहुत अधिक महत्व देनेवाला देश है । वंश को आगे ले जाने की चिंता यहाँ के लोगों को हमेशा सताती रहती है । यह माना जाता है कि वंश बेटों की वजह से ही आगे बढ़ता है । मृत्यु के उपरांत बेटे के हाथ से क्रिया कर्म करने से ही मोक्ष प्राप्ति हो सकती है । इसलिए बेटे की कामना हर माँ-बाप के मन में जमी हुई है । पुत्र-कामना से अंधे होकर स्त्री पर अत्यंत क्रूर बर्ताव किया जाता है । अगर घर की बहु, बेटी को जन्म दे तो उसे बेरहमी से मार दिया जाता है । पर आज विज्ञान की सहायता से कोख से ही पता चलता है कि भ्रूण मादा का है या पुरुष का है । अगर भ्रूण, मादा का हुआ तो गर्भपात करवा देते हैं । यानी जन्म लेने का अधिकार भी छीन लिया जाता है ।

पुत्र-कामना की एक और वजह भविष्य में लड़की की वजह से होने वाला खर्च है । लड़की का विवाह उनके लिए एक बहुत बड़ी समस्या बन जाती है। इस संदर्भ में ज्योत्सना मिश्रा कहती हैं, “भारतीय लिंग जाँच क्लिनिक को महिला संघटन के विरोध का सामना करना पड़ा, जब उन्होंने एक विज्ञापन का प्रचार किया था कि भविष्य में दहेज पर $3,800 खर्च करने से बेहत्तर है आज $38 खर्च करके मादा भ्रूण की हत्या की जाए ।”[1]

---

[1] Indian Gender detection clinics drew protest from women’s group after the appearance of advertisement suggesting that it was better to spend $38 now to terminate a female foetus than $3,800 later on her dowry; वुमेन आंड ह्यूमण राइट्स,पृ.सं-9

यौन शोषण-

"घरेलू हिंसा का सबसे क्रूरतम चेहरा तब सामने आता है जब घरों में लड़कियाँ मानसिक, शारीरिक, शोषण के साथ-साथ यौन- शोषण की भी शिकार होती हैं और यह हमला उनके किसी सगे या सौतेले चाचा, मामा, फूफा आदि के द्वारा किया जाता है।"[1] स्त्री के मन से अपनों पर से विश्वास ही उठ जाता है। अविश्वास का काला मेघ समाज में छा जाए तो पारिवारिक बंधन डगमगा जाएगा।

अन्य अत्याचार-

लिंग विकृति-

यह धार्मिक कर्मकांड के तहत आनेवाली हिंसा है। ऐसे कर्म को खतना करना भी कहा जाता है। स्त्री लिंग के बाह्य भाग को पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से निकाला जाता है। इस तरह लिंग को विकृत बनाया जाता है। आफ्रिका और मध्य पूर्व देशों में इसका प्रचलन है। एक ओर स्त्री को अपनी लैंगिकता में तृप्ति नहीं मिलती दूसरी ओर लगातार खून बहने की संभावना, पेशाब करने में कठिनाई, नवजात शिशु की मृत्यु की संभावना, रोग-संचार या योनि में रसौली या पुटी बनने की संभावना आदि इसके बुरे परिणाम हैं। यह क्रिया वास्तव में मानवाधिकार का हनन है। यह बात साफ है कि यह रिवाज़ स्त्री के स्वास्थ्य को बिगाड़ती है, प्रजनन एवं यौन क्रियात्मकता में अड़चन डालती है। समाज में पुरुष को सुख देनेवाले उपकरण के रूप में ही 'स्त्री' का निर्माण होता है और इस प्रक्रिया में स्त्री की तकलीफों को बिल्कुल नज़रंदाज़ किया जाता है।

[1] कुमुद शर्मा, स्त्री घोष, पृ.सं-15

तेज़ाब फेंकना-

बदला लेने के उद्देश्य से या मन की जलन की वजह से किसी व्यक्ति पर तेज़ाब फेंका जाता है । शरीर के जिस भाग पर तेज़ाब गिरा हो, वहाँ पूर्णतः जल जाता है, एक तरह से विकृत बन जाता है । उसकी निशान बनी रहती है । अक्सर इसे मुँह पर फेंका जाता है । कभी-कभी अंधेपन का कारण भी बन सकता है । तेज़ाब-आक्रमण कई कारणों से किया जाता है- घरेलू झगड़े, दहेज, विवाह या यौन प्रस्ताव को ठुकरा देना आदि ।

उत्तेजित भीड़ द्वारा हिंसा-

जब कोई औरत अकेली, स्वावलंबी होकर रहती है तो समाज के कुछ लोग यह नहीं सह पाते । वे इस ताक पर रहते हैं कि कब वे उस औरत पर धावा बोल दें । उसके साथ लैंगिक दुर्व्यवहार होने की भी संभावना है । सुनिता कृष्णन इसका जीता जागता सबूत है । सुनिता कृष्णन ने अपने ही गाँव के दलितों को अक्षर ज्ञान प्रदान किया । सिर्फ़ यही कारण था कि वहाँ के उच्च वर्ग के लोगों ने उनका सामूहिक बलात्कार किया ।

लुक-छिपकर परेशान करना-

इसमें एक या एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा किसी व्यक्ति के प्रति अनावश्यक या भ्रामक केंद्रीकरण होता है । हमेशा पीछा करके, नज़र रखके, धमकियों से डराया जाता है । यह एहसास दिलाते हैं कि वे कोई अजनबी हैं पर अक्सर जान पहचानवाले जैसे दोस्त, साथी, सहयोगी ही होते हैं । यह डराना- धमकाना हद से ज़्यादा होने से, इसका अंत उस व्यक्ति की मौत से होता है जिसे शिकार बनाया जाता है ।

यौन उत्पीड़न-

विद्या क्षेत्र या कर्म क्षेत्र में जब किसी को डराया धमकाया जाता है, तो उसे यौन उत्पीड़न कहा जा सकता है । लैंगिक सेवा के बदले कुछ देने का वादा करके भी यह दुर्व्यवहार किया जाता है । यह मान- मर्यादा, प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाने वाले अनावश्यक वाचिक, शरीरिक, लैंगिक आचरण हैं । यह भयानक, प्रतिकूल, अपमानजनक, घिनौनी, परिस्थिति की सृष्टि करता है । सभी शैक्षिक संस्थाओं को माँ सरस्वती का मंदिर मानते हैं पर वहीं आज स्त्री पीड़ित है । हमारा संस्कार हमें यह सिखाता है कि गुरु का स्थान भगवान से भी पहले है- माता, पिता, गुरु, दैवम् । पर बड़े अफसोस के साथ कहना पड़ रहा है कि आज वही गुरु यौन तृप्ति के लिए अपनी छात्राओं को ही हवस का शिकार बना रहा है ।

मानव तस्करी-

स्त्री की स्थिति इतनी गिर गई है कि वह मात्र क्रय-विक्रय की चीज़ बन गई है । "विविध सामाजिक, आर्थिक और दैहिक कारणों से ज़ोर-ज़बर्दस्ती करके, बहला फुसला या मजबूरी का फायदा उठाकर धोखे से या फिर पैसों के बदले इनसानों को एक जगह, राज्य, देश से दूसरे भौगोलिक स्थान तक पहुँचाना मानव तस्करी कहलाता है ।"[1] पलक झपकते ही कम उम्र की लड़कियों को बड़े-बड़े महानगरों में बेचा जाता है । विदेश में भी इनका निर्यात होता है । इसके चपेट में आने के कई कारण हो सकते हैं । पर सबसे महत्वपूर्ण दो कारण हैं- गरीबी और अशिक्षा । मानव तस्करी के दलाल इस ताक में रहते हैं कि कब एक ऐसी शिकार मिल जाए जो एक बार फँसी तो ज़िन्दगी भर केलिए फँस जाए , जो इनकी साजिश को कभी समझ ही न पाए , जो कानून से भी कोई मदद लेने की समझ नहीं रखे । मानव तस्करी, अधिकतर लड़कियों के लिए किसी देश के कोठे के

---

[1] गीताश्री, सपनों की मंडी, पृ.सं- 19

दरवाज़े खोल देते हैं ; अन्य कइयों को ज़बर्दस्ती किसी से शादी करनी होती है , या शारीरिक अंगों से हाथ धोना पड़ेगा, या भिखमंगों के गिरोह में शामिल होना पड़ेगा । “ जब ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं चलती, जहाँ लालच भी काम नहीं करता, वहाँ तस्करी सबसे कारगर औज़ार है । तसकरी स्त्री को इतना निरुपाय बना देती है कि उसे अपनी जड़े भी याद नहीं रहती, अस्तिव तो दूर की बात । वह किसी ना किसी प्रकार की विलापहीन मशीन में बदल जाती है ।” [1] भूमंडलीकरण के इस दौर में मानव तस्करी , स्त्री शोषण का महत्वपूर्ण रूप बन गया है । इसे भुगतने वाली स्त्रियों से भी बदतर हो जाती है इस जाल से किसी तरह बच निकलने वाली स्त्रियों की ज़िन्दगी । उनके सामने ‘आगे क्या’ का सवाल मुँह बाये खड़ा रहता है । अब तक जो परिवार और समाज की शान थी, आज वह कलंक बन जाती है । कोई उसे अपनाने के लिए तैयार नहीं होता । कभी-कभी वह वापस उसी दलदल में अपने को धँसा लेती है ।

स्त्री-श्रमिक का शोषण –

समान काम केलिए समान वेतन का नियम तो मौजूद है । पर वह कहाँ तक व्यावहारिक तौर पर लागू किया जाता है ? यह सवालिया निशान आज भी मौजूद है । कम वेतन देकर स्त्रियों का श्रम लूटना, स्त्री शोषण का और एक रूप है जिसे आज भी स्त्रियाँ भुगत रही है ।

स्त्री-प्रवासी श्रमिक का शोषण-

अधिक पैसे कमाने के मोह में स्त्रियाँ विदेश चली जाती हैं । वहाँ जाकर वे नौकरानी भी बन जाती हैं । पर अफ्सोस उनका सपना धरी कि धरी रह जाती है । वे

---

[1]गीताश्री, सपनों की मंडी, पृ.सं- 92

अपने मालिक या मालकिन के शोषण का शिकार बनती हैं । उन्हें लज्जा भंग या यौन शोषण का शिकार होना पड़ता है या मार पीट सहना पड़ता है । उन्हें अपने देश जाने भी नहीं दिया जाता । पासपोर्ट छीनकर अपने पास रख लिया जाता है । उनके श्रम का शोषण किया जाता है । उन्हें यथा समय वेतन भी नहीं दिया जाता तथा खाने-पीने-पहनने के मोहताज बना दिये जाते हैं । यहाँ तक कि उन्हें अपने देश या अपनों से संपर्क बनाए रखने भी नहीं दिये जाते ।

स्त्री के द्वारा स्त्री का शोषण-

कहा जाता है कि एक स्त्री का मन स्त्री ही जान सकती है । पर कभी-कभी यह गलत भी हो जाता है । ज़िन्दगी के इस सफर में ऐसे भी मौके आते हैं जब एक स्त्री दूसरी स्त्री की सबसे बड़ी शत्रु बन जाती है । इस अवसर पर दहेज को एक खलनायक की दृष्टि से विश्लेषण करे तो पाएँगे कि यह आखिर होता कैसे है । वही अपने बेटे और पति को उकसाती है और अपनी बहू पर शारीरिक, मानसिक तौर पर अत्याचार करती है ।

माँ अपनी बेटी को बेचने की खबरें आम बनती जा रही हैं । आज कल समाचार पत्रों, पत्रिकाओं के पन्नों की सुर्खियाँ बनती जा रही हैं । वेश्यालयों, कोठी में प्रौढ़ा स्त्री ही नवागतों को अपना मान-सम्मान गिरवी रखने केलिए उकसाती है । वह खुद तो फँसी है और दूसरों को भी फँसाने केलिए उतावली होती है । यह महत्वपूर्ण सवाल बनकर खड़ा रहता है कि क्यों स्त्री दूसरी स्त्री को भी दलदल में खींचती है, उसे गिरने से रोकती क्यों नहीं । क्या पैसा और ओहदा सभी रिश्तों से बड़ा होता है ? स्त्री खुद को कुछ मर्दों के गलत इरादों केलिए औज़ार बनाती है | शादी, नौकरी आदि के नाम पर झांसा देकर लड़कियों को महानगरों की 'अंधी गुफाओं' में ले जाते हैं । ऐसे भी हालात हमारे समाज

में मौजूद है जहाँ एक स्त्री दूसरी स्त्री की इज़्ज़त आबरू को लूटकर अपना घर बसा लेती है। और सम्मान की ज़िन्दगी बिताती है।

पोर्णोग्राफी-

व्यावहारिक तौर पर दिन-ब-दिन स्त्री के विरुद्ध यौन हिंसा, लैंगिकता और असमानता बढ़ती जा रही है। इसके पीछे का एक प्रमुख कारण पोर्णोग्राफी है। उत्तर आधुनिक नारी निर्भीक और सुंदर बनना चाहती है। सौंदर्य और मनोरंजन के उद्योग इस चिंतन का नाजायज़ फायदा उठाते हैं ; धन और यश के अंधे कुएँ में उन्हें पूरी तरह से धँसा देते हैं। टी.वी चैनलों में आ रहे अधिकांश विज्ञापनों में स्त्री कामुक और उत्तेजक दिखाई देती है। चड्डी, बनियान, ब्रा-पैंटी, साबुन, पर्फ्यूम और अन्य सौंदर्य वर्द्धक सामग्रियों के विज्ञापनों में स्त्री नग्न या अर्द्धनग्न होती है। "अभिव्यक्ति की आज़ादी के नाम पर ' आधी दुनिया ' को देह के दो राहे पर सिर्फ सेक्स, वस्तु, गोश्त, जानवर और मर्दों के मनोरंजन का साधन बनाने का यह एक ऐसा षड्यंत्र है, जो पूँजी कमाने का सबसे आसान और ' शर्तिया इलाज ' (रास्ता) नज़र आता है लेकिन समय रहते अगर इसे नहीं रोका गया तो निश्चित रूप से अंततः इसके नतीजे विस्फोटक सिद्ध होंगे। " [1] दूरदर्शन चालू करते ही या रास्ते से होकर गुज़रते ही दीवार पर चिपके पोस्टरों में स्त्री की छवि वाक़ई लोगों के मन को बुरी तरह से प्रभावित करती है। पोर्ण फिल्मों में दिखाई जाने वाले दृश्यों को आज़माने की इच्छा लोगों के मन में जाग उठती है। पर कभी-कभी इसका शिकार बनती है मासूम बच्चियाँ। कभी प्यार का झांसा देकर या बलात, लड़कियों के साथ यौन संबंध स्थापित किया जाता है और उनके उत्तेजक छवि को कैमरों में कैद करके धमकियाँ दी जाती हैं और भयभीत करके निरंतर यौन शोषण, उत्पीड़न का शिकार

---

[1] सं- प्रो.कमला और राजेंद्र शर्मा , स्त्री मुक्ति का सपना, पृ.सं- 526

बनाया जाता है। इस तरह न चाहते हुए भी सभी गलत काम कर गुज़रने के लिए मजबूर होती है। वह खुद को एक स्त्री होने केलिए कोसती है। यह विश्व की कई महिलाओं की नियति है।

सैबर क्राइम-

स्त्रियों के फोटो खींचना, उसमें मोर्फिंग करके उसको ब्लैकमैल करना, उसको दिखाकर उसे वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर करना, उनके नग्न चित्रों को खींचना, उसके साथ किये यौन संबधों के विडियो दिखाकर उसे फँसाना, उसको इंटरनेट में प्रकाशित करना आदि इसकी सीमा में आते हैं।

नारीवादी आंदोलन का सफर

नारीवादी आंदोलन को भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो, पाएँगे कि जब विश्व में क्रांतियाँ उठ रही थीं, तब भारत में भी इसका असर ज़रूर पड़ा। भारत में यहाँ-वहाँ आंदोलन चल पड़े। अंग्रेज़ों के आगमन के साथ ही स्त्री का जीवन बदलना शुरू हुआ। यद्यपि इसमें उनका स्वार्थ निहित था, फिर भी कई दृष्टियों से भारतीय जीवन में सुधार आया। खासकर ईसाई मिशनरियों के द्वारा नारी उत्थान का कार्य संपन्न हुआ।

स्त्री के साथ होनेवाले अन्यायों या अमानवीयता के खिलाफ आवाज़ उठाने की हिम्मत स्त्री को नहीं थी। "उन्नीसवीं सदी में एक समय ऐसा भी आया जब महिलाओं की भलाई-बुराई के मुद्दे प्रमुखता से उभरे और भारतीय महिलाओं की जीवन स्थिति में सुधार के प्रारंभिक प्रयास पुरुषों द्वारा किए गए।"[1] इस संदर्भ में राजाराममोहन राय,

[1] राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800-1990, पृ.सं-12

ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, केशवचंद्र सेन; केरल के श्री नारयण गुरु, अय्यनकाली, वी.टी भट्टतिरिप्पाड आदि के नाम सगौरव लिये जा सकते हैं । राजाराममोहन राय पहले भारतीय थे जिन्होंने भारत में मौजूद सती प्रथा जैसे जघन्य कर्मकांड का कठोर स्वर में विरोध किया । उनके अथक प्रयास से सन् 1829 को इसपर रोक लगा दी । बंगाल के गवर्नर जनरल ने सती निर्मूलन अधिनियम पारित किया । सन् 1815 में राजाराममोहन राय ने अपने आत्मीय सभा के द्वारा स्त्री शिक्षा की बात को सार्वजनिक रूप में छेड़ा था । ईश्वरचंद्र विद्यासागर की सहायता से सन् 1849 में तत्कलीन शिक्षा सचिव श्री बेथुने ने कलकत्ते में 'सेक्युलर नेटिव फीमेल स्कूल' नाम से पहला महिला स्कूल की स्थापना की । कलकत्ते से शिक्षा की रोशनी बंबई में भी पड़ी । ज्योतिबा फूले ने सन् 1852 में तीन कन्या पाठशालाएँ खोलीं साथ ही अछूतों के लिए एक स्कूल खोला । सन् 1850 में ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह पर लगे प्रतिबंध को समाप्त करने केलिए अभियान चलाया । इनके प्रयास से सन् 1856 में विधवा पुनर्विवाह का नियम पास हुआ । इन्होंने अंतर्जातीय विवाह का भी ज़ोरदार तरीके से समर्थन किया । "केश्वचंद्र सेन ने जात-पांत को तोड़ने, अछूतों और स्त्रियों की हालत सुधारने, विधवा-विवाह कराने, अनाथालय, विधवाश्रम, रात्रि पाठशालाएँ आदि खोलने का कार्यक्रम अपनाया ।"[1] सन् 1863 में दयानंद सरस्वति द्वारा शुरू हुआ आर्य समाज का आंदोलन स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार दिया । धीरे-धीरे बहनों, पत्नियों, बेटियों ने इनके कार्यक्रमों से प्रभाव ग्रहण कर आंदोलन की भागीदार बनीं । पंडिता रमाबाई, स्वर्णकुमारी देवी आदि इसके उत्तम उदाहरण हैं । पंडिता रमाबाई ने 23 वर्ष की आयु में पूना में 'आर्य महिला समाज' की स्थापना की । महिला उद्धार की गतिविधियों में स्वर्ण कुमारी देवी का योगदान भी बहुत ही महत्वपूर्ण है । इन्होंने सन् 1882 में 'लेडीज़ थियोसोफिकल सोसाइटी' की स्थापना की; सन् 1886 में सखी समिति

[1] अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृ.सं-44

की स्थापना की । यह कई अनाथों तथा विधवाओं के लिए एक सहारा बनी । इन्हें शिक्षित किया गया तथा इन्हे हस्त कलाएँ भी सिखाई गई । इस समय समाज सुधारकों का लक्ष्य समाज में व्याप्त बुराइयों को जड़ से मिटाना था, खासकर उच्च जाति की हिन्दू स्त्रियों के जैसे सती प्रथा और बाल-विवाह का विरोध ; 'विधवा विवाह' को व्यवहार में लाना ; निरक्षरता को मिटाना । इस तरह उन्नीसवीं सदी में समाज सुधार पर ध्यान दिया जाने लगा ।

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में पूरे भारत में राष्ट्रीयता की भावना फैली हुई थी । गाँधीजी ने औरतों को घर की कैद से आज़ाद किया । देश को आज़ाद करने से जुड़े कई आंदोलनों में गाँधीजी ने महिलाओं को स्थान दिया । एनी बेसेंट एक ऐसी हस्ती हैं जो भारत की न होते हुए भी भारत की बनकर रह गईं । भारत में शिक्षा की धारा को बहाने और भारतवासियों के दिलो दिमाग से अंधविश्वास को पूरी तरह से मिटाने केलिए जी जान से कोशिश की । धीरे-धीरे स्त्री संगठनों का उदय हुआ जैसे अखिल भारतीय महिला सम्मेलन, भारतीय महिलाओं का राष्टीय फेडरेशन आदि । राजनीतिक भागीदारी का अधिकार, महिला मताधिकार आदि पर नारीवादियों का ध्यान लगा रहा । श्रीमती सरोजिनी नायडू, मार्ग्रेट कजिंस, एनी बेसेंट के साथ कई अन्य महिलाओं के शिष्टमंडल ने भारत में महिला मताधिकार केलिए पहल की । इनके और कई महिला संस्थाओं के लगातार परिश्रम से यह तो हासिल कर लिया कि भारत में प्रांतीय सरकारों को महिला मताधिकार पर विचार करने का अधिकार है । सन् 1947 के बाद स्त्री को नागरिक अधिकार की प्राप्ति हुई; समान काम केलिए समान वेतन प्राप्त हुआ, बच्चों की देखभाल के लिए जगह-जगह क्रेश बनाए गए । सन् 1920 के उत्तरार्द्ध में मज़दूर आंदोलनों में महिलाओं की उपस्थिति भी दर्शनीय है । "उस समय न केवल अनेक महिला ट्रेड यूनियन नेता थीं बल्कि महिला कामगरों में संगठित होने की जागरूकता पैदा हुई श्रमिक

आंदोलनों में उन्हें विशेष भूमिका निभाने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई ।" [1] स्त्री की शक्ति और भी देखने लायक तब थी जब उसने दंडी मार्च में भाग लिया था । दंडी यात्रा के आखिरी दिनों में सरोजिनी नायडू ने भी इसमें भाग लिया था । इससे यह बात साफ होती है कि नारी संघर्ष के सफर को आगे बढ़ाने में हर ज़माने में कोई न कोई औरत की उपस्थिति ज़रूर होती है । देश की आज़ादी के लिए की गई लड़ाई ने स्त्री की ज़िन्दगी ही बदल दी । गाँधीवादी युग में चर्खा चलाकर, अहिंसा के पथ को ज़िन्दगी की राह बनानेवाली औरतों में कुछ ऐसी भी निकली जो देश की आज़ादी के लिए क्रांतिकारी बन गई । स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेनेवाली महिलाओं में भीकाजी रुस्तम कामा की धीरता बेमिसाल है । वे पहले भारतीय थीं जिन्होंने पहली बार पूरे भारत के लिए एक झंडा फहराया था । "भारतीय स्वंत्रता के प्रतीक तिरंगे झंडे का नमूना श्रीमती कामा द्वारा ही भारत से बाहर तैयार किया गया ।"[2] 22 अगस्त सन् 1907 को स्टटगार्ट (जर्मनी) में अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन हुआ था । कामा जी ने घोर भाषण दिया और जोश में आकर 'भारतीय स्वाधीनता का झंडा' कहते हुए एक झंडा फहराया । इससे ही आज का तिरंगा झंडा उभर आया । "1928 में पहली बार कोलकत्ता की छात्राओं ने 'छात्री संघ' की स्थापना की, जो क्रांतिकारी तरीके से संघर्ष करना चहता था । यह संघ लड़कियों केलिए स्टडीज़ क्लास लेता था, उन्हें लाठी तथा तलवार चलाना सिखाता था, साथ ही साइकिल चलाना और मोटर ड्राइविंग भी सिखाई जाती थी ।"[3] धीरे-धीरे भारत में महिलाओं को संघठित होने का मौका मिला । कभी वे उपनिवेश के खिलाफ एकजुट हुई तो कहीं साम्राज्यवाद के खिलाफ । कभी-कभी उन्होंने अपना क्रांतिकारी रूप प्रकट किया । कामगारों, खानों, बागानों में काम करनेवाली स्त्रियों ने अपने हक केलिए तथा अत्याचारों के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद की ।

---

[1] राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800-1990, पृ.सं- 149

[2] आशारानी व्होरा, भारत की प्रथम महिलाएँ, पृ.सं- 15

[3] शरद सिंह, पत्तों में कैद औरतें, पृ.सं- 152

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारीवादी आंदोलन फीका पड़ गया, क्योंकि राष्ट्र-निर्माण के मुद्दे ने स्त्री के मुद्दों को दबा दिया। पर, आज़ाद भारत के संविधान में स्त्री को समान अधिकार दिए जाने की घोषणा ज़रूर की गई । सन् 1970 तक आते-आते यह एहसास होने लगा कि संवैधनिक 'समानता' मात्र किताबी है । तो फिर से नारीवादी आंदोलन में नई जान फूँक दी गई । लिंग अधारित भेदभाव को जड़ से उखाड़ फेंकना इनका लक्ष्य रहा। इस तरह से वे बराबरी के सिद्धांत को यथार्थ का रूप देना चाहते थे। महिला आंदोलनों का यह नेक इरादा होता है कि दुनिया से गैर-बराबरी का खात्मा और एक समतापरक समाज की स्थापना हो । समाज में हर किसी को अपना विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्राता होनी चाहिए इसके साथ उसे नाइंसाफी से सुरक्षित भी होना है । ऊपरी तौर से देखें तो समकालीन नारीवादी आंदोलन ने स्त्री-पुरुष के बीच मौजूद भेदभाव को एक महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में उठाया है। स्त्री, पुरुष के ज़ुल्म से अत्यंत त्रस्त थी । पति की नशाखोरी को पत्नी उत्पीड़न का मुख्य कारण माना गया और शराब विरोधी आंदोलन की शुरुआत हुई । स्त्रियों ने गाँव-गाँव जाकर शराब की भट्टियों को तोड़ा । मीरा सावदा और सुजाता घोटोस्कर के नेतृत्व में शराब की बिक्री और शराब खोरी का विरोध हुआ पर, वक्त के साथ-साथ इस विरोध का रुझान बदल कर पत्नी पिटाई की तरफ हो गया। एक वक्त ऐसा था जब पत्नी की पिटाई एक निजी बात समझी जाती थी पर अब स्थिति बदल गई। ग्रामीण स्त्रियाँ हाथों में हाथ डालकर एक दूसरे की मदद करने लगीं। ऐसी नौबत आ गई कि अब पत्नी की पिटाई करनेवाला खुद पिटेगा, एक से नहीं बल्कि कई औरतों के हाथों की गर्मी जानेगा।

मूल्यवृद्धि के खिलाफ भी स्त्रियों ने अपना विरोध ज़ाहिर किया। आंदोलन में गृहणियों ने प्रदर्शन के तौर पर बेलन से थालियाँ पीटीं। मूल्यवृद्धि का सीधा असर हर घर की औरतों पर पड़ता है। इसलिए इस आंदोलन में सभी औरतों की सहभागिता थी।

दिल्ली में जब दहेज के कारण मृत्यु दर बढ़ गया तब नारीवादी आंदोलन दहेज नामक 'देह व्यापार' की ओर भी सतर्क हो उठा। "दहेज एवं दहेज हिंसा के विरुद्ध चलाए गए आंदोलन में पितृसत्ता विरोधी, पूँजिवादी विरोधी स्त्रियों से लेकर रूढ़ीवादी पितृसत्ता की पक्षधर सहित अनेक विभिन्न दृष्टिकोणों वाली महिलाओं ने भाग लिया।"[1] महिलाओं का विरोध बढ़कर जब आंदोलन का रूप ले लिया तब मजबूरन कानून को भी स्त्री का साथ देना पड़ा और दहेज को कानूनन अपराध घोषित किया। दहेज और उससे जुड़े सारे नियम वक्त के साथ-साथ बदलते रहते हैं।

ये सब सिद्ध करते हैं कि स्त्रियाँ अगर चाहे तो बहुत कुछ कर सकती हैं, सिर्फ संगठित होने की ज़रूरत है । इसकी सदस्यता में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए । नारीवाद महिलाओं में अगर एकता बनाने में कामियाब हो जाए, तब ही उसे सफल माना जा सकता है। यानी जब स्त्री शोषण का शिकार बनती है या स्त्रीत्व अपमानित हो जाए तब स्त्रियाँ मदद केलिए पहुँचनी चाहिए। स्त्री को एक मददगार के रूप में ढालना नारीवाद का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। ।"स्त्री की संचेतना का संघर्ष केवल अपने हक की ही आवाज़ नहीं उठाता, बल्कि इसमें शुमार होंगी मानवीयता के आधार पर दबे-कुचलों की आवाज़ें।"[2] जल, भूमि, जंगल, परिस्थिति, नागरिक अधिकार, जाति आदि विषयों पर गहनता से शामिल होना और नेतृत्व भी देना अत्यंत आवश्यक है। अर्थात् स्त्री का सामाजिक सरोकार बढ़ाने का प्रयास स्त्री विमर्श करता है।

उपेक्षितों की आवाज़ बनीं औरतें

केवल अपने लिए जीना भी क्या जीना होता है ? अपने दुख में डूबे रहने से फायदा ही क्या है ? "वैयक्तिक दुखों के दुर्ग में घुटते रहने से बात नहीं बननेवाली, दुर्ग-

---

[1] राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास , पृ.सं- 256

[2] रजनी गुप्ता, आज़ाद औरत कितनी आज़ाद, पृ.सं-12

द्वार खोल देने का समय आ गया है ।"[1] कई स्त्रियों ने अपने दुर्ग द्वार खोला और दूसरों के दुर्ग द्वार खोलने केलिए जी जान से कोशिश की

मणिपुर की नागरिका और राजनीतिक कार्यकर्त्ता ईरोम चानू शर्मिला ने सालों विशेष सेना अधिनियम, 1958 को हटाने केलिए भूख हड़ताल किया । यह एक ऐसा नियम है जो मणिपुर के नागरिकों की स्वतंत्रता, आज़ादी से घूमने फिरने, इच्छा से व्यवसाय करने, शांतिपूर्ण सभा का आयोजन करने के अधिकार का हनन करता है ।

भूमंडलीकरण के इस दौर में मानव तस्करी की समस्या एक विकराल रूप लेती जा रही है । महिला तस्करी में बड़े-बड़े लोग शामिल हैं और पैसों के बलबूते पर नियम-कानून से भी बच निकलते हैं । इसके खिलाफ जंग का ऐलान करती हुई सुनीता कृष्णन मैदान में कूद पड़ी । अपनी जान जोखिम में डालकर उन्होंने कई मासूमों को अंधेरे से उजाले की तरफ ले आईं । पीड़ित युवतियों की सबसे बड़ी समस्या रहने की जगह है । सुनीता कृष्णन 'लोहे का स्वाद' जानती थी । उन्होंने अपने क्रोध और दर्द से शक्ति अर्जित की और उस शक्ति का प्रयोग अन्य स्त्रियों को बचाने केलिए इस्तेमाल किया । शायद इसलिए इन लोगों के पुनर्वास के लिए उन्होंने हैदरबाद में 'प्रज्वला' नामक गैर सरकारी संगठन का रूपायन किया । ये, इस संगठन की मुख्य पदाधिकारी तथा सह संस्थापक है । यह संगठन, देह व्यापार से बच निकलनेवालों, एच आई वी की बीमारी से पीड़ित महिलाओं एवं बच्चियों को आश्रय देता है । इस संगठन ने उन हज़ारों बच्चों को नई ज़िन्दगी दी जिनकी माँ वेश्या थीं । ऐसी सशक्त नारी की चर्चा ज़ोर शोर से होनी चाहिए, पर ऐसा नहीं हो रहा है ।

प्यास लगते वक्त हम जल्दी से कोको-कोला, पेप्सी या ऐसा ही कुछ खरीदकर पीते हैं । पर क्या हम इस बात से वाकिफ है कि ये कई मासूमों के पेय जल को छीनकर बनाये जाते हैं । केरल के पालक्काड जिले का एक छोटा सा गाँव है-प्लाचिमड़ा । कोको-

[1] अनामिका, मन मांझने की ज़रूरत, पृ.सं-13

कोला कंपनी ने अपने मुनाफे केलिए पूरे गाँव के भू-जल के स्तर को घटा दिया । फैक्टरी से पीछे छूटनेवाले रासायनिक पदार्थों के विसर्जन से पूरे गाँव का जल स्रोत ज़हरीला बन गया है । पर्यावरण प्रदूषण और भू-जल स्तर की गिरावट के कारण कोको-कोला फैक्टरी के खिलाफ सशक्त आवाज़ उठानेवाली एक ज्वलंत महिला थी मैलम्मा । पहले इनकी आवाज़ अधिकारियों के कानों तक नहीं पहुँची पर प्रत्येक दिन के बाद मैलम्मा के नेतृत्त्व का जन आंदोलन सशक्त बनता गया । मेधा पटकर ने भारत के सभी जनांदोलनों को जोड़ने का प्रयास किया । इनके नेश्नल एलांयस फॉर पीपुल्स मूवमेंट ने मैलम्मा के कोका-कोला विरुद्ध संघर्ष का भरपूर साथ दिया । इस तरह उसे एक राष्ट्रीय स्तर पर आकर्षण दिलाया ।

ज़िन्दगी में प्रकृति का उपयोग तो हर कोई करता है, पर कितने लोग हैं जो प्रकृति की रक्षा केलिए अपनी ज़िन्दगी को दाँव पर लगा देते हैं ? बड़े गर्व के साथ बहुतों का नाम ले सकते हैं जिनमें स्त्रियाँ सशक्त दिखती हैं । नर्मदा नदी के बचाव के लिए मेधा पाटकर ने पूरी शिद्दत से कोशिश की और इसे ‘नर्मदा बचाओ आंदोलन’ का रूप दिया । इन्होंने सरदार सरोवर परियोजना से प्रभावित होनेवाले लगभग 37 हज़ार गाँवों के लोगों को अपना हक दिलाने केलिए कठिन संघर्ष किया । महेश्वर बाँध के विस्थापितों के आंदोलन का नेतृत्व भी उन्होंने हौसले के साथ किया । मेधा पाटकर ने अहिंसा और सत्याग्रह का मार्ग अपनाकर सन् 1986 में परियोजना केलिए आर्थिक सहायता मुहैया करने वाले विश्व बैंक तक को, संगठित होकर चुनौती दी । अब तक की उनकी ज़िन्दगी संघर्ष भरी है । यूँ कह सकते हैं कि उन्होंने अपना जीवन उत्पीड़ितों (मानव और नदी), और विस्थापितों केलिए समर्पित कर दिया । अरुधंती राय, जो मेधा पाटकर की निकट सहयोगी है, नर्मदा बचाओ आंदोलन से जुड़कर उसे और मज़बूत बना दिया । उन्होंने बुक्कर सम्मान से प्राप्त पैसे इस आंदोलन में अर्पित कर दिया । देखनेवाली बात है कि आज भी उनकी लड़ाई दमदार है ।

डार्ली तिरुवनंतपुरम की एक दलित स्त्री हैं । डार्ली को नैय्यार नदी से रेत की खुदाई के कारण नदी और उसके किनारे वाले उसके घर और खेती पूर्ण रूप से नष्ट होने का अहसास हो रहा था । उन्होंने इसके खिलाफ सख्त आवाज़ उठाईं । माफिया लोगों के या अन्य अधिकारियों की धमकियों से डरे बिना, एक हसिया को पीछे लटकाए उन्होंने संघर्ष किया । उन्होंने ठान लिया कि जब तक जान है, तब तक नैय्यार नदी की रक्षा करेगी । जसीरा भी केरल के कन्नूर जिल्ले की एक ऐसी औरत है जिसने रेत की खुदाई के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद की थी । सुगतकुमारी मलयालम की कवयित्री होने के साथ ही साथ एक सामाजिक कार्यकर्ता भी है । प्रकृति से सच्चे मन से प्रेम करनेवाली एक शख्सियत हैं । पेड़ों पर कील चुबकर सूचना पट्ट टाँगने के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलंद की । दिन ब दिन बढ़ते सूचना पट्ट की वजह से बड़े-बड़े पेड़ों का नाश होने लगा । वे अपनी जान की परवाह किए बगैर रेत खुदाई माफिया के विरुद्ध भिड़ गईं । इन सबके साथ-साथ वे कई उपेक्षितों की आश्रयदाता भी हैं ।

मध्यप्रदेश के गोंड आदिवासियों के लिए अपना जीवन समर्पित करने वाली नारी है, केरल की दयाबाई (मेर्सी मैथ्यु) । विकास की आड़ में ज़ोरों से इनका शोषण होता है । अज्ञान आदिवासियों के जीवन में ज्ञान की रोशनी फैलानेवाली दयबाई को कई कठिनाइयों क सामना करना पड़ा । फिर भी अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर रहीं । उन्होंने हर अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाई और जीवन के अंत तक अत्याचार के खिलाफ लड़ने का निश्चय कर लिया । वे ये सब इसलिए कर पा रही हैं क्योंकि उन्होंने मन से खुद को सशक्त बना लिया है । उनका विश्वास है कि सार्थक ज़िन्दगी के लिए मनुष्य के बीच अच्छे संबंध बनाए रखना अति आवश्यक है । भारत की सभी स्त्रियों से अपने मन की शक्ति को पहचानने का संदेश देते हैं ।[1] इन सभी के कर्म, स्त्रियों को यह सीख देते हैं कि किसी के इतंज़ार के बदले खुद निकलना ही उचित है । तब समाज में बहुत कुछ बदला जा सकता

[1] गोपीनाथ मठत्तिल के साथ साक्षात्कार, मातृभूमि दैनिक पत्र

है । अस्मिता का सवाल आज के विमर्श के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण है । यह सिर्फ व्यक्तिगत न रहकर सामाजिक भी होना चाहिए । स्त्री के विकास की लड़ाई को सामाजिक सरोकारों से जोड़ना ही चाहिए ।

स्त्री विमर्श की दशा एवं दिशा

'मानव' में स्त्री और पुरुष का अकेले में कोई अस्तित्व नहीं है । मुक्ति है तो केवल व्यक्ति का, उसमें स्त्री और पुरुष का अंतर संगत नहीं है । "व्यक्ति की मुक्ति ही तो समाज की मुक्ति है ।" [1] चाहे पुरुष हो या स्त्री, सब तरह की बुराई, संकट या परेशानियों से मुक्त होना चाहिए । 'स्त्री विमर्श' स्त्री की स्थिति का एक चिंतन है । वह चाहे समाज में हो या परिवार में हो, चाहे वह आर्थिक रूप में हो या राजनीतिक रूप में हो , यानी स्त्री का संपूर्ण विश्लेषण ही स्त्री विमर्श है । कोई भी संपूर्ण नहीं होता । तो जायज़ है कि उसमें अच्छाई के साथ बुराई भी होती है । किसी में अच्छाई का पलड़ा भारी होता है तो किसी में बुराई का । "समाज में स्त्री के स्थान पर चिंतन, स्त्री के अधिकारों पर चिंतन तथा स्त्री की मानसिक एवं शारीरिक अवस्थाओं पर चिंतन – इन तमाम चिंतनों के द्वारा पुरुष के समकक्ष स्त्री को उसकी सम्पूर्ण गरिमा के साथ स्थायित्व प्रदान करने का विचार ही स्त्री विमर्श है ।" [2] यद्यपि नारीवाद का लक्ष्य स्त्री को हर ज़जीरों से मुक्त करना है, पर हर एक अनुयायियों की अपनी-अपनी दृष्टि है । किसी ने यह सोचा कि स्त्री को घर की चार दीवारी से, पुरुष के दबंग से मुक्त करना इसका लक्ष्य है ; किसी दूसरे ने यह सोचा कि आर्थिक रूप से स्वावलंबन इसका लक्ष्य है, तो किसी तीसरे ने यह सोचा कि प्रसाधन

[1] इंदु जैन, कवयित्री इंदु जैन से डॉ. गुरुचरण सिंह की बातचीत, संचेतना पत्रिका, महीप सिंह(संपादक), पृ.सं- 25

[2] शरद सिंह ,पत्तों में कैद औरतें, पृ.सं-152

सामग्री के उपयोग को कम करके स्त्री को प्राकृतिक चीज़ के रूप में सुरक्षित रखना इसका लक्ष्य है । इन्हीं दृष्टियों को परखने से नारीवादी दृष्टि की तस्वीर साफ हो जाएगी ।

आधुनिक नारीवाद को दिशा देने वाली पुस्तक, सिमोन दि बोआ की 'द सेकेंड सेक्स' (1949) है । पर इससे भी पहले भारत में महादेवी वर्मा की पुस्तक 'श्रृंखला की कड़ियाँ' (1942) सामने आई । यह किताब नारी मुक्ति के उपायों की ओर गहन चिंतन और विद्रोही तेवर को प्रस्तुत करती है । महादेवी वर्मा का मानना था कि स्त्री के व्यक्तित्व में कोमलता और सहानुभूति के साथ साहस तथा विवेक का एक ऐसा सामंजस्य होना आवश्यक है जिससे हृदय के सहज स्नेह की अजस्र वर्षा करते हुए भी वह किसी अन्याय को प्रश्रय न देकर उसके प्रतिकार में तत्पर रह सके ।[1]

पश्चिम में रेडिकल फेमिनिज़्म बहुत ही विख्यात है । इसने नारी की बदहालत केलिए मर्दों को सौ फीसदी ज़िम्मेदार ठहराया है । इसके साथ ही विवाह जैसी संस्थाओं पर भी प्रश्न चिह्न लगाया है । भारत में कुछ नारीवादी ऐसा माननेवाली हैं कि विवाह प्रथा की शुरुआत से स्त्री की गुलामी की ज़िन्दगी की शुरुआत हुई थी । "एक विवाह प्रथा की स्थापना के साथ ही एक ओर जहाँ मानव सभ्यता के उच्चतर, अधिक वैज्ञानिक नैतिक मूल्यों का जन्म हुआ, वहीं पुरुष द्वारा स्त्री को दास बनाये जाने की शुरुआत भी यहीं से हुई ।"[2] इसी के साथ स्त्री का एक सजीव सम्पत्ति के रूप में बदलाव शुरू हुआ । नारी चेतना के संदर्भ में अस्मिता का संकट भिन्नता और समानता के जटिल अंतर्द्वंदों और अंतरसंबंधों के समीकरणवाला संकट बन जाता है । स्त्री विमर्श के आरंभ में महिलाएँ इस बात पर विश्वास करती थीं कि जब तक उन्हें निजी संपत्ति में अपना हक नहीं मिल जाता, तक तक उनका उद्धार नहीं होगा ।

[1] महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ.सं-19

[2] कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक, पृ.सं- 42

स्त्री के संबंध में परिवार को देखा जाये तो वहाँ पर सामंती व्यवस्था है । यहाँ शोषक एवं शोषित दोनों प्रकार के वर्ग हैं । यहाँ एक वर्ग सभी प्रकार की सुख- सुविधाओं का अनुभव करता है तो दूसरा वर्ग सभी प्रकार के अभावों से भरी ज़िन्दगी जीने के लिए विवश है । लड़कियों को पढ़ाया जाने लगा, पर इसके पीछे भी एक मक्सद रहा । उनके शिक्षित होने से शादी की मंडी में भाव बढ़ जाता है । बच्चों को घर में ही मुफ्त की ट्यूटर मिलेगी । स्त्री में जब स्वत्व की पहचान हुई, तब वह इस तरह फूटी कि कोई उसे काबू नहीं कर पाया । उनमें इतना जोश आया कि उन्होंने दुनिया की परवाह ही करना छोड़ दिया । अपनी ताकत पर भरोसा करने लगीं । रिश्तों से इतर एक पहचान बनाना ही नारीवादियों का लक्ष्य है । उन्हें लगा कि सालों से चलते आ रहे सोच को बदलना बहुत ज़रूरी है । हमारे समाज में ऐसे बहुत सारे पुरुष हैं जो स्त्री को महज़ एक नुमाइश की चीज़ मानते हैं । "स्त्रीवाद की मुख्य माँग यह है कि स्त्री के कॉस्मेटिक और कुलवर्द्धनात्मक उपयोगों के ऊपर भी उसे कुछ समझा जाए- एक बराबर का इनसान जिसे विकास के समान अवसर प्राप्त हों, जिसे एक पुरुष को छोड़ने केलिए दूसरे पुरुष का दामन पकड़ने की ज़रूरत न हो ! "[1] नारीवाद वास्तव में अपने वजूद की लड़ाई है ।

मानव होके भी मानव की गणना न किए जाने के कारण और अपने अधिकार से वंचित रखने की बात वह पहचान गई तब नारीवादी विचारधारा का जन्म हुआ । स्त्री लेखन में स्त्री जीवन की चिंताएँ समाजिक मुद्दों के रूप में विश्लेषित हुई है । नारीवादियों ने नव नारीवाद के सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष को परत दर परत परखने की कोशिश की है । " पितृसत्तात्मक सामंती पारिवारिक ढाँचे की स्वेच्छाचारिता, कूपमण्डूक रागात्मकता, स्त्रियों के पार्थक्य आदि का स्थान आज बाज़ार-उपनिवेशवाद के दौर में पूँजीवादी पारिवारिक ढाँचे की निरंकुशता, नग्न यौन उत्पीड़न, उपभोक्ता संस्कृति और बेगानापन ने ले लिया है । और नया ढाँचा अभी से क्षरणशील है, विघटनोन्मुख है । साथ

[1] अनामिका, स्त्रीवादी बावड़ी में एक बूँद, हँस पत्रिका, पृ.सं- 89

ही सकारात्मक पहलू यह है कि स्त्री के भीतर अपनी अस्मिता की नई पहचान और नई मुक्ति चेतना पैदा हुई है । ”[1] आज स्त्री निर्णय ले सकती है । स्त्री को घर की कैद से छुटकारा दिलानेवाला पूँजीवाद है । पर इसी ने स्त्री को बाज़ारू भी बना दिया । इस संदर्भ में कात्यायनी कहती हैं, “पूँजीवाद के विकसित अवस्था की उपभोक्ता संस्कृति में, सूचना तंत्र, प्रचार तंत्र और नए मनोरंजन उद्योग के अंतर्गत स्त्री खुद में एक उपभोक्ता सामग्री बनकर रह गई । ”[2] स्त्री को नारीवाद के सकारत्मक पक्ष को स्वीकार करना ही भारत की संस्कृति और विकास केलिए उचित है ।

आखिर स्त्री चाहती क्या है ? अपने परिवार में इज़्ज़त । जब उसे यह प्राप्त नहीं होती तब एक हद के बाद अपने वजूद केलिए आवाज़ उठाने लगती है । इसी संदर्भ में प्रभा खेतान बताती हैं- “पितृसत्तात्मक परिवार के नियमों और आदेशों के अंतर्गत दमित होने, घुटने, और आहुति देने को स्त्री तैयार नहीं; अत: पारिवारिक जीवन में व्यक्तिकरण की माँग के साथ ही साथ यौन दमन से मुक्ति चाहती है ।” [3] उनका मानना है कि स्त्री की सबसे पहली माँग यही है ।

प्रभा खेतान ने बारीके से नारीवाद और नव-नारीवाद के अंतर को स्पष्ट किया है । इसे परखते वक्त यह साफ होता है कि नारीवाद ने हमेशा नए मोड़ लिए हैं । पहले जिन्होंने परिवार को जेल और घर के मर्द को जेलर कहा था, वे ही आगे यह कहने लगे कि परिवार कोई जेल-खाना नहीं है । प्रभा खेतान एक नए सोच को आगे रखती है कि पुरुषों का कामकाजी जीवन इतना मोहक नहीं है । अर्थात् हर बात पर पुरुष की ओर उँगली उठाने की प्रवृत्ति कम करने की शुरुआत की । नव-नारीवादियों ने सत्तर के दशक के नारीवादियों को कहीं न कहीं गलत ठहराया ।

---

[1]कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक, पृ.सं 43
[2] कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक, पृ.सं 43
[3] बाज़ार के बीच: बाज़ार के खिलाफ; पृ.सं-183

यद्यपि प्रभा खेतान पूर्ण रूप से पुरुष को कुसूरवार नहीं ठहराती, पर फिर भी पुरुष की ओर से की जानेवाली ज़्यादतियों को अनदेखा भी नहीं करती । दो लोगों के द्वारा की गई गलती की ज़िम्मेदारी जब सिर्फ एक के सिर पर मढ़ दी जाती है तब प्रभा खेतान का खून खौलने लगता है । यह बात ठुकरायी नहीं जा सकती है कि स्त्री हमेशा योनि का पर्याय थी और आज भी है । प्रभा खेतान के नज़रिए को परखा जाए तो एक बात स्पष्ट होती है कि वे सच्चे अर्थ में स्त्री- पुरुष की समानता चाहती हैं । ज़रूरी नहीं कि जिसने बच्चे को जन्म दिया है, वही बच्चे का भरण पोषण करे । " वे जब पुरुष की आर्थिक ज़िम्मेदारी को बाँट रही हैं तो पुरुष का भी यह दायित्व बनता है कि वह स्त्री की स्वतंत्रता और समानता को महत्व देकर परिवार में उसे उचित सम्मान दिलाए । "[1] परिवार और समाज में स्त्री और पुरुष दोनों को समान अवसर प्रदान करना चाहिए । तभी समानता का सच्चा रूप स्थापित होगा ।

कुमुद शर्मा फैशन प्रतियोगिताओं के प्रति स्त्री के आकर्षण को चिराग के प्रति पतंग के आकर्षण के साथ तुलना करती है । वह यह बल देकर कहती हैं, "महिला उत्थान या महिला सशक्तिकरण से इन प्रतियोगिताओं का दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं है ।"[2] ऐसा सौंदर्य प्रदर्शन स्त्री को महज़ एक व्यापार की वस्तु बना देता है और उनका रचनात्मक क्षमताओं को कुंठित कर देता है । "वे एक अच्छी नेता, अच्छी शिक्षिका, अच्छी अनुसंधानकर्ता और अच्छी खिलाड़ी आदि बनने के बजाय ब्यूटी पॉर्लर के आईने में अपनी छवि को, अपने उत्थान को ढूँढ़ती हैं और इसे ही नारी आज़ादी का नाम दे बैठती है । "[3] शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक मार्ग से होकर सशक्तिकरण की मंज़िल पाने की प्रेरणा देना ही सच्चा स्त्री विमर्श है । बौद्धिक रूप से रुचियाँ बदलना अनिवार्य है । स्त्री की मुक्ति तभी हो सकती है जब वह स्वयं इसकी पहल करे और इस ओर पूरी

---

[1] कुमुद शर्मा, स्त्री घोष, पृ.सं-64

[2] वही, पृ.सं- 57

[3] वही, पृ.सं- 61

शिद्दत से हर कदम रखे। रमणिका गुप्ता का भी यही मानना है और आगे कहती हैं, "उपभोक्ता-सामग्री-सी बाज़ार में बिकाऊ वस्तु की तरह चकाचौंध भरी, मोहक दुनिया नकारकर- एक मेहनतकश, अन्याय न सहनेवाली, स्वावलंबी, स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर और अपने जनतांत्रिक अधिकारों का उपभोग करनेवाली स्त्री की भूमिका अदा करनी होगी।"[1] मतलब यह है कि हर कोई जो नारीवादी नज़रिए को अपनाती हैं, वे सभी स्त्री के कर्म क्षेत्र पर बल दे रही हैं।

आज माहौल बदल गया है। विज्ञान के विकास के साथ मानव की ज़िन्दगी सुगम बनती जा रही है। पर इसी सुगम ज़िन्दगी के बीच विज्ञान के दुरुपयोग से एक दूसरे को हानि भी पहुँचाया जा रहा है। इसका सबसे बड़ा शिकार स्त्री ही होती है। "सामंती व्यवस्था से लेकर उत्तर आधुनिक समाज दोनों में ही स्त्री के प्रति असंवेदनशीलता, अभद्रता, असमानता, क्रूरता स्पष्ट दिखाई देता है। "[2] कानून बढ़े, जनसंख्या बढ़ी और साथ ही उत्पीड़न भी बढ़ गया है। अर्थात् बढ़ते कानून के हिसाब से अपराध का दर भी बढ़ने लगा। लैंगिक अपराध के कई कारण सामने आए हैं जैसे कामोत्तेजक विज्ञापन-चलचित्र, फैशन का बोलबाला, विलासप्रियता के साधन में बढ़ोत्तरी, धार्मिक आचार-विचार का ह्रास, गर्भ निरोध के मार्ग का सुलभ होना आदि। अर्थात् स्त्री के जीवन को बदलने में मीडिया का बहुत बड़ा हाथ है। विज्ञापन में - आजकल घर के काम में पुरुष की भागीदारी दिखाई जा रही है जैसे बर्तन धोना, खाना पकाना आदि। पर स्त्री का उत्तेजक के रूप में प्रस्तुतीकरण बढ़ता ही जा रहा है। जैसे कपड़ों के हों या पर्फ्यूम के हो या दंत मंजन के हो या फिर पौडर के हों षेविंग क्रीम के विज्ञापनों में हो। हमेशा उसके पीछे अति सूक्ष्म कैमरे लगे रहते हैं। कहीं भी वह सुरक्षित नहीं है। इन सबसे जूझने के लिए नए-नए तरीकों को अपनाना बहुत ज़रूरी है। कात्यायनी का मानना है, "हम प्राय:

---

[1] स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने, पृ.सं- 27
[2] राकेश कुमार, नारीवादी विमर्श, पृ.सं-24

वर्तमान की कई सच्चाइयों को पुराने फ्रेम में कसकर अतीत के नारों-मुहावरों के सहारे वर्तमान की नई चुनौतियों से जूझना चाहते हैं और तब पुराने आंदोलनों के मॉडल प्राय: नये आंदोलन के पैरों की ज़ंज़ीर बन जाते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कभी-कभी अतीत की महान क्रांतियाँ नई क्रांतियों के प्रयोग में बाधक बन जाती है ।"[1] इसलिए शायद पश्चिम में नारीवाद का तीसरा दौर शुरू हुआ जिसमें नए दौर की चुनौतियों का सामना करने की शक्ति दी जाती है ।

पहले स्त्री के सामने सारे दरवाज़े बंद थे । पर आज बहुत सारे खुल गए हैं । अब यह उस पर निर्भर करता है कि वह कौन सा दरवाज़ा खोले । "जो सबसे ज़्यादा ज़रूरी है और जिसका अभाव है, वह है स्त्रियों में आत्मविश्वास ।"[2] जीवन में आत्मविश्वास की कमी की वजह से अपने ऊपर होने वाली सभी असामाजिक घटनाओं के सामने वह अपनी आँखें मूँद लेती है । उसे निर्णय लेना ही होगा कि वह जीवन भर निष्क्रिय या केवल उपभोग की वस्तु बनकर रहेगी या फिर सक्रिय, सृजनशील व्यक्ति बनकर जिएगी । देह मुक्ति नारीवादियों की सबसे महत्वपूर्ण माँग थी । पर इसकी ओट में यौन अराजकता को शिखर तक पहुँचाना समाज के लिए हानिकारक है । इस संदर्भ में अनामिका कहती है, "खुश रहना और हँसना और प्यार करना कोई अपराध नहीं, ज़िन्दा रह लेना ही सब कुछ नहीं, ज़रूरी है- खुश होकर ज़िन्दा रहना; और इस क्रम में मर्दों की तरह आततायी हो जाने से बचना भी ।"[3] अर्थात् पुरुष के समान बनने और उनसे आगे निकल जाने की होड़ में कोई गलती न कर बैठना है ।

"हम एक ओर नारी सश्क्तिकरण की बात करते हैं, स्त्री शिक्षा व स्त्री आत्मनिर्भरता की बातें करते हैं दूसरी ओर उसे एक ऐसा सभ्य व स्वच्छ समाज भी नहीं देते जहाँ वह

---

[1] दुर्ग द्वार पर दस्तक, पृ.सं- 56

[2] तसलीमा नसरीन,भारतवर्ष में बचे रहेंगे सिर्फ पुरुष-हँस पत्रिका, पृ.सं-73

[3] अनामिका, मन मांझने की ज़रूरत, पृ.सं-105

निर्भय होकर विचरण करें ।"[1] अखबार की सुर्खियाँ बनती जा रही स्त्रियों की दुर्दशा इसका सबूत है । स्त्री आज सब तरह से सशक्त बनने की कोशिश कर रही है । पर उसे और अधिक, आज के माहौल के अनुरूप खुद को ढालना चाहिए । इसके लिए अगर उन्हें जूडो, कराटे की ट्रैनिंग लेनी पड़े तो बिन्दास करे । उसे अपनी मानवीय गरिमा के साथ अपनी पहचान बनानी होगी । यही यथार्थ रूप से स्त्री सश्क्तिकरण है । भारतीय स्त्री को चाहिए कि सबसे पहले आत्मनिर्भर बने ।

निष्कर्ष

सामंतवादी युग में स्त्री को कोई सामाजिक या राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं था । सबसे चौंकाने वाली बात है कि धर्म और कानून ने स्त्री की बदहालत को मिटाने की कोशिश नहीं की क्योंकि इसे स्त्री की नियति मानी गयी । सामंतवाद के बाद पूँजीवाद का उदय हुआ जिसने स्त्री के मन में अपने अधिकारों की अलख जगायी थी । धीरे-धीरे ही सही, स्त्री ने हर कदम सोच समझकर लिया और बहुत कुछ हासिल कर लिया । शुरुआती दौर में स्त्री की दुख भरी ज़िन्दगी पर लगाम लगाना प्रमुख उद्देश्य था । इसके बाद वह घर की कैद से छूट गई । अब वह समाज की उत्पादन प्रक्रिया में भागीदार बनना चाहती है । इस सपने के बीच पुरुषवर्चस्व काँटा बनकर फैल गया । इसका भी संघटित रूप से सामना किया गया । अब वह अपनी ज़िन्दगी का निर्णय खुद लेना चाहती है । नारी की माँग बढ़ती गई और उसकी ज़िन्दगी का ढाँचा बदलता गया । भूमंडलीकरण के इस दौर में उसने अपना मुकाम हासिल करने की ठान ली है । वह बड़े-बड़े पदों पर विराजमान होकर राज कर रही है ।

जब तक स्त्री जाति पर अमानवीयता का दबंग रहेगा, जब तक उसके चोट खाए शरीर से खून रिसता रहेगा, तब तक स्त्री विमर्श की प्रासंगिकता बनी रहेगी । स्त्री विमर्श

[1] डॉ. प्रभा दीक्षित, स्त्री अस्मिता के सवाल, पृ.सं-152

यह एहसास दिलाता रहेगा कि आज भी लिंग भेद की राजनीति हमारे समाज में बरकरार है । इसलिए सतर्क रहना आवश्यक है । आज की स्थिति की ओर ध्यान दे तो भूमंडलीकरण और स्वच्छंदतावाद के नकारात्मक पक्ष को गहनता से परखना और उससे निकलने का रास्ता ढूँढना आज के नारीवादियों की मुख्य चुनौती है । 'स्त्री विमर्श' को उन तमाम परतंत्रताओं तथा सदियों से समाज को जकड़े हुए रूढ़ियों के विरुद्ध के सिद्धांत के रूप में परिभाषित किया जा सकता है । यानी यह स्त्री के दायरे को बढ़ाता है । नारीवादी मानते हैं कि जड़ हो चुकी आस्थाओं के खिलाफ खड़ा होना अत्यंत आवश्यक है । स्त्री विमर्श के ज़ोर पकड़ने के साथ- साथ लेखिकाएँ स्त्री से जुड़ी हर बात का पुनर्विचार करने लगीं । स्त्री को शोषण के बाह्य और आंतरिक कारणों से मुक्त करना ही स्त्री मुक्ति अथवा स्त्री विमर्श का लक्ष्य होना चाहिए ।

जंजीरों को तोड़ना बड़ी बात है तो जंजीरों के बोध को तोड़ना उससे भी बड़ी बात होती है । इसके लिए खुद को तैयार करना पड़ेगा । जब तक यह संभव नहीं होता तब तक नारी मुक्ति भी संभव नहीं है । उनको अपना रास्ता समाज के सभी भेदभावों को मिटाकर एकत्रित होकर तय करना पड़ता है । एक सरसरी नज़र दौड़ाया जाए तो पाएँगे कि आधुनिक युग के नारीवादी लेखक-लेखिकाओं ने स्त्री से जुड़े कई गंभीर विषयों पर अपनी कलम चलाई हैं, जैसे स्त्री लैंगिकता, लिंग पर आधारित असमानता, पहचान बनाने की राजनीति आदि । केरल के लेखक वी.टी भट्टतिरी पाडु का एक प्रसिद्ध नाटक है- 'रसोई घर से मंच की ओर' (अडुक्कलयिल्निन्नुम अरंगत्तेक्कु)। नारीवादी लेखिकाओं ने इनके नाटक को यथार्थ का चोला पहनाया ।